

उपवास के प्रयोग

नवीन और आधुनिक अनुसंधान

उपवास की उपयोगिता अत्यन्तता और मनुष्य के शारीरिक प्रार मानसिक उन्नति का वैज्ञानिक विधान

लेखक

केशवकुमार ठाकुर

प्रकाशक

विद्य-भारती पुस्तक माला, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण

अप्रैल १९३७

नया संस्करण

प्रत्येक मनुष्य तभी तक जीवित है, जब तक उसके जीवन में प्रकृति का अनुसरण है ।

× × ×
 औषधियों के द्वारा, किसी रोग को अन्ध्रा करने की चेष्टा करना, सम्पूर्ण शरीर को रोगी बनाना है ।

× × ×
 शरीर को नीराग करने के लिए कृति का अनुसरण ही सर्वोत्तम मार्ग है, उसमें आरोग्य करने की अमोम शक्ति है ।

× × ×
 रोग-निवारण करने के लिए प्रकृति जो उपचार करती है, उपवास उसका मूल साधन है, उपवास के प्रयोग उस साधन की वैज्ञानिक प्रियाये हैं ।

× × ×
 जो उपवास और भूख को एक समझते हैं, उनको, इन दोनों के समझने का ज्ञान नहीं है । उपवास, शरीर को रचना का कार्य करता है और भूख के द्वारा शरीर का क्षय होता है । दोनों के अलग-अलग कार्य हैं—एक के द्वारा रचना का और दूसरे के द्वारा नाश का ॥

× × ×
 शारीरिक और मानसिक उन्नति के लिए उपवास प्राकृतिक साधन है, जो आग में तपे हुए सेने की भाँति, शरीर को निर्मल और पवित्र बना देता है ॥

भूमिका

उपवास का विषय मेरे जीवन का एक प्रिय विषय है। इसके द्वारा मुझे स्वयं अनंत लाभ हुए हैं और लोग भी हो रहे हैं। मैंने इस विषय पर पढ़ा है और अब भी पढ़ता रहता हूँ।

जब कोई कवि अपनी कविता अपने लिए लिखता है तो उसकी वह कविता, उम्र कविता से अधिक महत्वपूर्ण होती है, जो वह दूसरों के लिए लिखता है। लम्बक की रचनाएँ या प्रकार की होती हैं एक अपने लिए और दूसरी दूसरों के लिए। उपवास का प्रयोग, मैंने दूसरों के लिए नहीं अपने ही लिए लिखा है। इसके साथ-साथ यदि दूसरे भी लाभ उठा सकें तो अच्छा ही होगा।

हमारे देश और समाज में उपवास के विषय पर विद्वानों की अच्छी सख्या मिली। परन्तु इस विषय पर हिन्दी में पुस्तकों का अभी पूर्ण अभाव है। अभी तक, उपवास चिन्तित्वा ही एक पुस्तक हमारे सामने थी, जो बहुत पहले की लिखी हुई एक अंग्रेजी पुस्तक के आधार पर है। उसके पश्चात् अंग्रेजी में, अनेक उपयोगी पुस्तकें इस विषय पर लिखी गयी हैं जो विदेशों में प्रकाशित हुई हैं। इस पुस्तक को अपने अनुभवों के साथ-साथ मैंने विद्वानों की लिखी हुई पुस्तकों के द्वारा उपयोगी और अप्रु-डेट बनाने की चेष्टा की है और बहुत मासधानी से काम लिया है। यदि यह पुस्तक लोगों के लिए काम की सिद्ध हो सकती, तो मेरा अभिप्राय साधक हो सकेगा।

कमलिनी-प्रस

२८ मार्च १९३७

विनीत—

केशव कुमार -

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—उपवास का मद्द न	६
जौवन की स्वाभाविकता	१०
अधिकता घातक होती है	११
विहारा का शमन	१३
२—प्रकृति स्वयं रोग का नाश करती है	१६
प्रकृति के नियमों का ज्ञान	१७
अन्य जीवों में प्रकृति के नियमों की जानकारी	१८
प्रकृति में रोग निवारण की शक्ति	१९
मानव-स्वभाव में प्रकृति का संकेत	२०
बड़े आत्मियों के विश्वास	२२
३—शरीर को बनाए रखें और उसकी आवश्यकता	२३
शरीर की मेगीनरी	२३
भाजन की उपयोगिता	२४
सफाई और स्वच्छता	२५
ऊपरी सफाई	२५
भीतरी सफाई	२६
४—रोगों की उत्पत्ति	२९
रोग, अपराधों का दण्ड है	३०
रोग उत्पन्न होने का क्रम	३१
विजातीय द्रव्य का विषमय प्रभाव	३३

	५—रोग और उसका निवारण	३५
७	वर्तमान चिकित्सा	३६
८	रागों की वृद्धि	३७
१०	चिकित्सा या व्यापार	३८
११	रागों की वृद्धि और वर्तमान चिकित्सा	३८
१२	६—प्राचीन काल में उपवास	४१
१५	प्राचीन काल में उपवास का रूप	४२
१७	उपवास की व्यापकता	४३
१८	उपवास पर अन्य जातियों का पूजा	४४
१९	७—भोजन उसके व्यय और परिणाम	४७
२०	भोजन की आवश्यकता	४८
२२	जीवन-तत्त्वों के निर्माण का कार्य	४९
२३	शरीर में भोजन की क्रिया	५१
२४	शरीर के भीतर, विभिन्न प्रकार के मूल	५३
२५	८—रोग और अन्य चिकित्सायें	५५
२६	लाभ या सरलता	५६
२७	रोग, हमारे शत्रु नहीं हैं	५७
२८	शरीर से विष उत्पन्न होने की सूचना	५९
२९	शरीर से विष निकालने का कार्य	६१
३०	रोग की असाध्य अवस्था	६२
३१	वर्तमान चिकित्सा का कार्य	६४
	शोषणियों का विष	६६

शरीर में उन्नाप और पीड़ा	१५१
छोटे उपवास के बाद बड़े उपवास	१५२
अनिद्रा और अशान्ति	१५२
१८—उपवास के मात्र अन्य प्रयोग	१५५
जल के प्रयोग	१५५
गनीमा का प्रयोग	१५७
मिट्टी के प्रयोग	१५८
वायु-मेहन	१६१
१९—उपवास की तिन दशाओं में लाभ नहीं होता	१६२
शक्तियों का अधिक क्षय हो जाने पर	१६३
उपवास में जल्दराजी	१६३
विश्वास और श्रद्धा की कमी	१६४
विश्राम का अभाव	१६६
समय से पूर्व उपवास तोड़ना	१६७
उपवास तोड़ने पर भोजन में असावधानी	१६७
२०—उपवास के दिनों में उपद्रव	१७०
शरीर में गर्मी	१७१
मस्तक-पीड़ा	१७२
उल्टी होना	१७२
आँसुओं में जलन	१७३
हिचकी आना	१७४
घमंकर आना	१७५

अधिक कमजारी	१७५
नाड़ी की चाल में अन्तर	१७७
२१—उपवास से न अन्दे हाने वाले राग	१७६
दूटे हुए प्रग	१७६
माच अथवा निर्मी हड्डा आदि न हट जाना	१८०
क्षरम, फाला घात	१८१
मस्तिष्क के राग	१८१
सूत्रा राग	१८१
२२—उपवास से अन्दे हाने वाले राग	१८०
अन्दे हाने वाले रोग	१८०
२३—रोग आगे बनने लिए उपवास	१८५
अर्द्धोपवास	१८५
छाटे उपवास	१८८
बड़े उपवास	१८६
२४—उपवास का प्रारम्भ और उसके कार्यक्रम	१६१
उपवास-काल का कार्यक्रम	१६१
उपवास के लाभों का अनुभव करना	१६४
२५—उपवास कब और कैसे तोड़ना चाहिए ?	१६५
उपवास की अवधि	१६५
उपवास तोड़ने की सूचना देने वाले लक्षण	१६६
उपवास कैसे तोड़ना चाहिए ?	१६७

उपवास के प्रायः पञ्च	२००
३ से लेकर ६ तिथी तक के उपवास का पञ्च	२००
७ से लेकर १० तिथी तक के उपवास का पञ्च	२०१
१० से लेकर १८ दिना तक के उपवास का पञ्च	२०२
१८ दिना से अधिक उपवास का पञ्च	२०२
२६—उपवास के उपगत म्यात्रय	२०५

उपवास के प्रयोग

१-उपवास का महत्व

More men have ruined themselves than have ever been destroyed by others more houses and cities have perished at the hands of man than storms or earthquakes have ever destroyed

जिस समय मैं अपने इन पत्रों में उपवास के महत्व लिखने बैठा, उम समय लिखने के पूर्व अग्नेची की उपरोक्त पक्तियों याद आगयीं। इन पक्तियों के लेखक का नाम स्मरण तो नहीं रहा किन्तु इनका स्मरण होते ही चित्त आनन्द से प्रसन्न हो उठा।

लेखक ने अपनी, इन पक्तियों से हमारे जीवन का कितना उचा भाव भरा है, इसका बताना बठिन है। वह कहता है—“मनुष्यों का विनाश दूसरों के द्वारा उतना अधिक नहीं होता जितना विनाश स्वयं उनके ही द्वारा होता है। तूफानों और भूकम्पों के द्वारा घरों और नगरों की उतनी हानि नहीं हुई जितनी कि उनकी हानि मनुष्य के हाथों से हुई।”

इन पक्तियां में जीवन का बहुत ऊंचा तथ्य भरा हुआ है। सचमुच यही बात है। सोचने और समझने के बाद आसानी के साथ, यह बात मान्य होती है कि हमारे जीवन की क्षति दूसरों के द्वारा उतनी नहीं होती जितनी कि क्षति हम स्वयं अपने लिए कर बैठते हैं। मत्सर में इस बात के उगहरण कम मिलेंगे चिनसे यह प्रमाणित होता हो कि दूसरों से और शत्रुओं से अधिक विनाश होता है। उजाय इसके कि शत्रुओं की अपेक्षा हम स्वयं अपने लिए अधिक विनष्टकारी हैं।

जीवन की स्वाभाविकता

अरे, यह बात कितनी सत्य है कि हमारे घरों और शहरों का नाश तूफानों और भूकम्पों द्वारा उतना नहीं होता जितना कि हमारे द्वारा—मनुष्यों के द्वारा। इतिहास के पन्ने इस सत्य का समर्थन करते हैं। इसी सत्य के आधार पर यदि यह कहा जाय तो अनुचित न होगा कि भोजन न पाने से उतने मनुष्यों की मृत्यु नहीं होती जितने अधिक मनुष्यों की मृत्यु भोजन पाने से होती है।

सहसा लोग कह बैठते हैं कि हज़ारों आदमी भूय के मारे मरे जा रहे हैं। लेकिन यदि पता लगाया जाय तो भूल से मरा हुआ एक भी न मिलेगा। किन्तु भोजन के द्वारा मरने वालों को हम रोज़ ही अँगो से देखते हैं। हमारी मृत्यु रोगों के कारण होती है और रोग भोजन के द्वारा पैदा होते हैं। इस बात को

अधिक विस्तार के साथ आगो परिच्छेदों के पत्रों में लिखा जायगा।

हमारी इस बात से यदि साइकल के जैसे कि जब हमारी मृत्यु भोजन के द्वारा जाती है ना फिर हमें लागू मानना पड़ेगा नहीं करेने। जब मानना ही हमारे मृत्यु का कारण है ता उमरे घट करेने मरना के लगे पड़ती है, किसी का इस प्रकार कहना हमनी सच्चाई पर प्रमाण नहीं टालता। हमारे कहने का यह अभिप्राय है कि भोजन में हमें लागू प्रमाण पडते है इसलिए हमें भोजन छोड़ देना चाहिए। जल में हमका जीवन प्राप्त होता है लेकिन इसके लिए यह साइकल नहीं कर सकता कि अधिक म अधिक जल न हम रहे निम्न कि हमका अधिक जीवन प्राप्त है। यूप की रूप हमारे शरीर का निर्माण बनाती है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि तजमे तेज रूप में अधिक से अधिक समय तक उमरी उपयोगिता का हमें लाभ उठाना चाहिए।

अधिकता पातक होती है

जात यह है कि जिस प्रकार अधिक और अनावश्यक भोजन हमारे नाश करारण हात है उमी प्रकार जल और सूर्य की धूप भी। भोजन के द्वारा हम जीवित रहते है लेकिन आवश्यकता-नुसार ही भोजन पातर। आवश्यकता से अधिक और विरह भोजन हमारे रोगों का कारण है। और रोग से ही हमारा विनाश होता है। इसमें सत्य यहाँ तक साध देता है कि यदि भोजन न

किया जाय तो मनुष्य जीवित रह सकता है, कुछ समय तक।
 कन्तु अनाप्रश्यक और निरुद्ध भोजन उतने ही समय में उसके
 नाश का कारण हो सकता है।

यहाँ पर एक छोटा सा उदाहरण था आता है। पन्द्रह-
 सोलह वन का एक लड़का घामार था, दो सप्ताह से अधिक उससे
 बीमारी में हा चुके थे। वह देहान्त में रहता था। एक अन्धे वैद्य
 की दया होरही थी। वैद्य जाने रोग को घटत न देखकर उसको
 खाना देना बन्द कर रग्य था। अनेक दिना से ज्वर उतरा न
 था। इस बीच में एक त्याहार पडा। उस त्याहार में घर में पूड़ी-
 बचीड़ी बनीं। सपी लागो ने पेट भरकर भोजन किया लेकिन
 उस घामार लड़के का कुछ खाने का न दिया गया। यह बात
 उसकी माता को असह्य मालूम हुई। उसने करणा के भावी में
 सोचा, इतना बडा त्याहार और मेरा लड़का त्याहार न मना
 सका और त्याहार का भोजन भी न कर सका।

घर के सब लोगो के खा पी चुकने के बाद भी उस माँ ने
 खाना न खाया। एकान्त पाकर उसमें न रहा गया। उसने उस
 बीमार लड़के से पूछा—बेटा कुछ खाओगे ?

लड़के को जोर के साथ ज्वर चढा हुआ था, सारा बदन आग
 हो रहा था। खुशकी के मार उसका मुँह सूख रहा था। उत्सुक
 नेत्रों से उसने माँ की ओर देखा और कहा—वैद्य जी ने तो खाने
 को रक्का है।

माँ ने कहाँ—हाँ, रोका है, लेकिन त्याहारका दिन है, जरा सा लेलो।

मैं से न रहा गया। उन्ने एक पूड़ी और शक्कर भिलाऊर दही देलिया। लडके ने उने खातिना। दिन बीत गया। रात को लडके की दशा में परिवर्तन होने लगा, उन्ने कुछ बचना आरम्भ कर दिया। रात ही का बेच जो का लाकर दिनाया गया तो मालूम हुआ कि उसका सत्रान हो गया है। यह देखकर बेच जी को बहुत आश्चर्य हुआ। सत्रान का कोई कारण उनका मालूम न हुआ। चौथे रात उस लडके की मृत्यु हो गयी।

यदि उस लडके का स्वास्थ्य के लिये पूड़ी और दही न दिया जाता तो किसो भी प्रकार उसकी मृत्यु न होती। जिस उपर में वह खेडा हुआ था, उनमें उने का खाता दिया गया, पर उमके लिए विष हो गया।

विकारों का शमन

यों तो हम जो भाजन करते हैं, उनसे हमको जीवन-शक्ति प्राप्त होती है किन्तु हमारे भाजन में उनकी अपेक्षित अवस्था में जो विकार उत्पन्न होते हैं यदि उनका शमन और नाशन किया जाय तो वे विकार हमारे शरीर के लिए विष होना शुरू हो जाते हैं। ये विकार प्रायः पैदा होते रहते हैं। इन विकारों के शमन के लिए उपवास के प्रयोग किये जाते हैं। हमारे जीवन के लिए भोजनों का जितना अधिक महत्व है, उमसे कम महत्व उपवास का नहीं है। भाजन के द्वारा हमको जीवन शक्ति प्राप्त होती है। भाजन में जहाँ यह एक गुण है, वहाँ उसमें दोष यह है कि उसका द्वारा हमारी अज्ञान प्रवृत्ति में विकार उत्पन्न होते रहते हैं। उपवास इन

विकारों का नाश करते रहते हैं। हमारे लिए जीवन शक्ति का प्राप्त करना जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी है शरीर में उत्पन्न हुए विकारों का नाश करना। आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही उपवास के प्रयोग किये जाते हैं।

संसार के सभी दशा में और उनकी भिन्न-भिन्न जातियां में उपवास का महत्व प्राचीन काल से चला आ रहा है। कोई भी ऐसा देश और जाति न मिलेगी, जिसमें इस महत्व के लाभ उठाने की व्यवस्था न हो। किन्तु प्राचीन काल के जीवन में और वर्तमान काल के जीवन में बड़ा अंतर हो गया है। और यह अंतर दिन-पर-दिन अधिक होता जाता है। प्राचीन काल में उपवास के महत्व धार्मिक जीवन में मिलाये गये थे। और उनको अलग कोई रूप न देकर विभिन्न प्रकार के त्योहारों और उत्सवों का रूप दिया गया था। इन त्योहारों और उत्सवों में लोग भिन्न-भिन्न प्रकार से उपवास करते थे और उससे लाभ उठाते थे।

वर्तमान युग प्राचीन काल से बहुत भिन्न होता जा रहा है। उपवास का जो महत्व धार्मिक भावों में मिश्रित किया गया था, उसका सत्य और वास्तविक महत्व वर्तमान युग में लोगों के सामने आया। विज्ञान की इस बढ़ती हुई चला ने इस सत्य की खूब खोज की और विद्वान लोग इस नतीजे पर पहुँचे कि उपवास के द्वारा शरीर को नीरोग बनाया जा सकता है। इतना स्पष्ट हो जाने के बाद उपवास के सबंध में शरीर शास्त्र के विद्वानों ने और भी खोज की। इस प्रकार जितनी ही उसकी खोज होती

गयी, उतना ही उसका मोधा सबध मनुष्य जाति के साथ जुडता गया । आज अवस्था यह है कि उच्च कोटि के शिक्षितो मे सत्य का महत्व बढ़ता जाता है और इसी सत्य ने लोगो के निकट उपवास का महत्व बढा दिया है । उपवास से हमारे शरीर का सबध है, और वर्त्तमान युग के विज्ञानों ने उसके प्रभाद को नितना उपयोगी साबित किया है, इसे अगले परिच्छेदो मे हम लिखने की चेष्टा करेगे ।

२-प्रकृति स्वयं रोगों का नाश करती है

प्रजा जिन राजा के राज्य में रहती है, राज्य के नियमों को भंग करने पर यह दृष्ट पानी है। यदि उस राज्य के नियमों के अनुसार उसकी प्रजा चलने की चेष्टा करे तो वह आधेरु सुख से रह सकती है।

जीवन का यह बहुत मोटा सिद्धान्त है। जीव मात्र की उत्पत्ति, उसका पालन और पोषण, उसका जीवन और विनाश एक मात्र प्रकृति के ऊपर है। प्रकृति इस ससार की निर्माता है। वही इसकी संचालिका है। इस सृष्टि का शासन उसी प्रकृति के हाथ में है। जिस प्रकार प्रजा राजा के नियमों का उल्लंघन करने से दण्ड पाती है उसी प्रकार प्रकृति के नियमों को उल्लंघन करने से हम लोग अपराधी होने हैं। यह अपराध हमारी समझ में कुछ है या न हो, हम उनको कुछ समझें या न समझें उनके सबध में हमें कुछ ज्ञान हो या न हो, लेकिन उनका काम बराबर होता रहता है। जिस प्रकार बिना कानून के कोई राजा नहीं हो सकता, वही प्रकार बिना नियमों के प्रकृति नहीं हो सकती। राजा के पास कानून है, प्रकृति के पास नियम है। हमको प्रकृति का ज्ञान हो या न हो, किन्तु प्रकृति अपना बराबर काम करती रहती है और उसके नियम बराबर हमारे जीवन में लागू रहते हैं। जहाँ हम उनके समर्थ में भूल करने हैं वहाँ हम दण्ड पाते हैं और जहाँ हम उनका अनुसरण करते हैं, वहाँ हमका सुख मिलता है।

प्रकृति के नियमों का ज्ञान

प्रकृति के नियमों के सप्रेम में एक बात यहाँ जान लेना बहुत जरूरी है। अपने अपने नियमों की जानकारी के लिए स्वयं व्यवस्था कर लनी है और उसी जानकारी के अस्तित्व अत्येक मनुष्य और जीव के शरीर में मौजूद हैं। जिस प्रकार हम जानते हैं कि चोरी करने में गड़बड़ मिलता है किसी का माल गायब करने से सजा मिलता है क्योंकि कर्म-नियम है। राजा के इन सजाओं का सना जानते हैं। परन्तु चोरों और डाकूओं की सव्याचना ही रहता है। तब गड़बड़ पाते रहते हैं और चोरी जेने बुरे काम ही रहते हैं। लेकिन यह नहीं कहें यह सकता कि चोर ने चोरी इसलिए ही कि उसका इस बात का ज्ञान न था कि चोरी करने में सजा मिलती है। सच्चा बात यह है कि इस बात का ज्ञान नभ का है कि चोरी करने से गड़बड़ मिलता है, किन्तु फिर भी लोग चोरी करते हैं।

प्रकृति के नियमों के सप्रेम में भी यही बात है। गरीब-अमीर शिक्षित-अशिक्षित, बालक-वृद्ध स्त्री-पुरुष आदि सभी को प्रकृति के नियमों का ज्ञान होता है। एक जानक चाहे वह कितनी ही छोटी उम्र का क्यों न हो प्रकृति के नियमों से अज्ञान नहीं होता। छ मास और चार मास का शिशु भी प्रकृति के नियमों का विरोध नहीं करना चाहता, जिस समय वह भूखा होता है, उस समय वह राता है किन्तु आवश्यकतानुसार पीकर दूध बढ़

कर देता है। आयरयकता से अधिक दूध पीने पर बड़ रीमार पडता है। माताये इस बात का भलीभाँति समझती हैं कि भूखे बच्चे को जब वे दूध पिलाने बैठती हैं, उन समय वह गात होकर दूध पीता है और जब उसका पेट भर जाता है तो वह दूध पीना बंद कर देता है। इसी प्रकार उससे बड़े बालक और सयाने आदमी भी प्रकृति के इन नियमों का ज्ञान रखते हैं। किंतु अनेक प्रकार के प्रलोभन और स्वार्थ मनुष्य जाति के इस ज्ञान को भेटियामेट कर देते हैं। प्रकृति ने अपने प्रभाव से ऐसी रचना की है कि उनके नियमों के विरोध में अरुचि उत्पन्न हो। जो बात प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करती है, उससे महसा घृणा होना, उसके रुकावट के लिए इससे अधिक और क्या हो सकता है। प्रकृति की यह व्यवस्था उनकी सफलता की परामाणा है। परन्तु मनुष्य का जीवन इतना अस्त व्यस्त होगया है और प्रकृति से वह इतना भिन्न होगया है कि उसके नियमों को भंग करते समय उसके हृदय में कोई अधिक वेदना नहीं होती।

अन्य जीवों में प्रकृति के नियमों की जानकारी

प्रकृति के नियमों का यह ज्ञान न केवल मनुष्य मात्र को है, बल्कि अन्य जीवों को भी ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार मनुष्य को। पशुओं के सत्रध में जिनको जानकारी है, वे जानते हैं कि जो उनके खाने के पदार्थ हैं, उन्हीं को वे खा सकते हैं। जा चीजें उनके खाने की नहीं हैं, उनको वे कभी न खायेंगे।

दूसरी बात यह है कि जितनी उतनी भूख हागी, उतना ही वे खायेंगे। अधिक खाने से मनुष्यों की तरह बीमार न पड़ेगे। इसका यह फल होता है कि मनुष्या के सिवा अन्यान्य जीव पशु-पक्षी, जानवर आदि मनुष्या की तरह बीमार नहीं पड़ते। और अधिक बीमार न पड़ने का कारण यह है कि वे प्रकृति के नियमों का उल्लंघन उतना नहीं करते हैं जितना कि मनुष्य करते हैं।

प्रकृति में रोग-निवारण की शक्ति

प्रकृति के नियमों का विरोध करने से और उनके प्रतिफल चलने से रोगों की उत्पत्ति होती है किन्तु यदि विरुद्ध आचरण बंद कर दिये जाय तो अपने आप उन रोगों का शमन भी होजाता है।

हमके उदाहरण में जमे हमने अधिक खा लिया और उससे हमको अपच होगया, अपच हो जाने के कारण हमारे शरीर में अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होगी और उन व्याधियों से हमको कष्ट होगा लेकिन यदि हम, प्रकृति के नियमानुसार खाना बंद कर दें तो जो व्याधियाँ उत्पन्न हुई हों, वे अपने आप शान्त हो जायगी। मान लिया जाय कि अपच से पेट में दर्द पैदा हुआ और उसके घाद खाना बंद कर दिया गया तो धीरे-धीरे दर्द शान्त हो जायगा। और उस व्याधि का अंत हो जायगा। प्रकृति के कितने अच्छे नियम हैं और कितनी सुन्दर उनकी व्यवस्था है।

प्रकृति के इन नियमों और उसकी व्यवस्था को हम अन्य जीवों में बहुत स्पष्ट देख सकते हैं। या तो कड़ने के लिए मनुष्य अधिक जानी माना जाता है लेकिन इस बात को मानना पड़ेगा कि मानव-जाति अपनी अनेक बातों में प्रकृति के तान हो गया है। पशु-पक्षी और जानवर प्रकृति के नियमों के अनुकूल जितने मिलते हैं, उतने हम लोग नहीं मिलते।

हम लोगों को पालनू पशुओं के साथ में अधिक जानकारी है। हमका मनका इस बात का पता है कि जब हमारे पालनू पशु बीमार पड़ जाते हैं तो वे अपने आप खाना छोड़ देते हैं। उन्हें कोई घताने नहीं जाता और न उनको शिक्षा की ही आवश्यकता है जिम्मे द्वारा वे जाने कि हमें खाना छोड़ देना चाहिए। वास्तव में किसी भी प्रकार की शारीरिक व्याधि उत्पन्न होने पर वे अपने आप खाना छोड़ देते हैं। और कुछ समय के बाद वे फिर खाने लगते हैं।

मानव स्वभाव में प्रकृति का संकेत

मनुष्य के स्वभाव में भी अपने नियमानुसार प्रकृति बराबर काम करती है। हम जब बीमार पड़ जाते हैं, जुकाम हो जाता है, ज्वर हो जाता है अथवा अन्य किसी प्रकार की शारीरिक व्याधि उत्पन्न हो जाती है, उस समय हमको खाने की इच्छा नहीं रहती। इस बात को हम लोग भली प्रकार अनुभव कर सकते हैं कि तबीयत खराब होने पर अथवा बीमार हो जाने पर हम

भूख को अनुभव नहीं करत। हमारे जीवों में प्रकृति का यही संकेत है। यदि हम प्रकृति के इस संकेत को ओर उसकी आज्ञा का विरोध न कर ओर इच्छा न होने पर खाना न खाये ता जो शारीरिक व्यथा उत्पन्न हुई वे बात धीरे-धीरे चौर हान लगेगी ओर कुछ समय के बाद आप आनन्द प्राप्त हो जायगी।

इस प्रकार के उदाहरणों में सिद्ध होता है कि प्रकृति में रोगों का निवारण करने की शक्ति है कि तु उसी दशा में जिस दशा में हम उसका संकेत ओर आज्ञा पर चल। परन्तु हमारा जीवन कुछ इस प्रकार का हा गया है कि हम प्रकृति के संकेत के अनुसार चल नहीं पाते।

वास्तव में हमारा जीवन बहुत दूषित हो गया है। बीमार होने पर हमारा भूख नहीं लगता, इच्छा नहीं होता, भोजन से कुछ घृणा सी होता है, परन्तु घर के लोगों के मार प्रणय नहा बचते, इनकार करने पर भी घर के लोग आग्रह करते हैं— कुछ खाली, थोड़ा-सा ही खाली। अनुकूल चाज न खाने ओर अमुक चीज खाली।" इस प्रकार के आग्रह के कारण प्रकृति का प्रतिगव दूट जाता है। ओर दूट क्यों न जाय। उसका तो एक संकेत मात्र है, जिसके ज्ञान से हमें खाना न खाना चाहिए ओर वह संकेत इतना खोरदार होता है कि जिस रुचि के कारण हम भोजन करते हैं, उस रुचि ओर स्वाद का ही वह नष्ट कर देती है। किन्तु हमारे घरों के जो आग्रह शुरू होते हैं, उनके सामने बेचारी प्रकृति का क्या बस चल सक्ता है।

बूढ़े आदमियों के विश्वास

छाटे से लेकर बड़े तक, किसी भी प्रकार के रोग और शारीरिक व्यथा का प्रकृति नष्ट करती है। इसकी पुष्टि में पुराने आदमियों के विश्वास अब तक चञ्चल आ रहे हैं। वे किसी भी प्रकार की व्याधि में दवाओं का सेवन नहीं करते। सप्ताह के सप्ताह वे बीमार पड़े रहेंगे, किन्तु वे ओषधि न खायेंगे। उसे लोगो को जिन्होंने देखा है, वे यह भी जानते हैं कि इस विश्वास के मनुष्य खाना भी छोड़ देते हैं। और जब तक उनका शरीर नीराग नहीं हो जाता, तब तक वे खाना नहीं खाते।

उपवास की ये माटी-मोटी बातें हैं जो शारीरिक रोगों और व्याधियों में जादू का सा प्रभाव डालती हैं। लेकिन उपवास के सम्बन्ध में शरीर विज्ञान के पंडितों ने जिस सत्य की छानबीन की है, उसको उन्होंने एक वैज्ञानिक रूप में मनुष्य-समाज के सामने रखा है। इस रूप में आकर उपवास के प्रयोगों ने अपना अद्भुत चमत्कार दिखा रखा है। जिनके संबंध में आगे चलकर उनकी अलग-अलग बातों पर हम प्रकाश डालेंगे।

३-शरीर की बनावट और उसकी आवश्यकता

उपवास क्या चाह है उससे प्रार शरीर में क्या समझ है
 और उसका शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है प्राणि जातों का
 जानने के पक्ष, यह आवश्यक है कि शरीर की बनावट और
 उसकी आवश्यकताओं का जान लिया जाय।

हमारा शरीर एक प्रकार का यंत्र है। यंत्र जिस प्रकार के
 काम करता है उसी जा प्रकृति देती है व सभी बातें हमसे
 शरीर-यंत्र में मिलनी। शरीर शास्त्र के विद्वानों ने शरीर-यंत्र की
 तुलना रेलगाड़ी के इंजन के साथ की है। उन्होंने बताया है कि
 अन्य यंत्र की गणना, शरीर-यंत्र, रेलगाड़ी के इंजन के साथ
 अधिक समता रखता है।

शरीर की मेशीनरी

रेलगाड़ी के इंजन के लिए सभी जानते हैं कि कोयला और
 पानी की आवश्यकता होती है। इंजन ही यही गुराक है। यदि
 इंजन का यह गुराक न मिले तो वह अपना काम न कर
 सकेगा। ठीक यही अवस्था हमारे शरीर-यंत्र की है शरीर भी
 कुछ यंत्र ही काम करता है। शरीर के चाने के पदार्थ, अनाज,
 फल, दूध, शाक, सब्जी, आदि और पीने के पदार्थों में जल है
 इन वा प्रकार के भोजन से अतिरिक्त एक भोजन और है और
 वह है वायु।

हमारे शरीर का वायु की आवश्यकता इतनी अधिक है कि उसके सामने अन्य आवश्यकतायें मामूली ही जाती हैं। गान को न मिने पीने का भी न मिल। ग्विन वायु के विना मिल काम नहीं चल सकता। इस प्रकार वायु, भोजन और जल—ये तीन प्रकार के भावों को पावर, हमारा शरीर-यत्र काम करता है।

भोजन की उपयोगिता

भोजन के नाम पर कुछ न कुछ खा लेना आवश्यक नहीं है। जिनको इन बातों का ज्ञान नहीं है, वे ऐसा कर सकते हैं, नहीं तो एक साधारण बात यह है कि भोजन जितना रुचिकर, पाचक और शक्तिवर्द्धक दिया जायगा, हमारा शरीर का उतना ही लाभ होगा। इस बात का और भी समझ लेने की जरूरत है। भोजन से शरीर को रस, रक्त और धीर्य की प्राप्ति होती है। जो भोजन हम खाते हैं, वह शरीर में जाकर अनेक प्रकार के यत्रों में पडकर तैयार होने लगता है। भाज्य पदार्थों से रस, रक्त और धीर्य तैयार करने के लिए शरीर के भातरी यत्रों को अपना प्रानर काम करना पडता है कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं, जिनसे अपनी आवश्यकता के तत्व, सरलता पूर्वक यत्रों को मिल जाते हैं और कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं, जिनको पकाने और उनसे वे तत्व तैयार करने में बड़ी कठिनाई पड जाती है।

ऐसी अवस्था में, यह आवश्यक होता है कि हम उन्हीं भोजनों को अपना भाज्य बनायें, जो पाचक हो, शक्तिवर्द्धक हों

और जिन्हें शारीरिक प्रयोगों के साथ प्रयोगों का प्रयोग प्राप्त हो जाता है। प्रयोगों के द्वारा शरीर के अन्दर भागों का अधिक काम नहीं करना पड़ता और उपयोगी तत्व प्राप्त हो जाते हैं।

सफाई और स्वच्छता

जिनका प्रयोग और मराने का ज्ञान है वे जानते हैं कि जिन्हा भी प्रयोग का मरना है और स्वच्छता का प्रयोग आवश्यकता होती है। जो मराने का मत और प्रयोग—मरना मरना नहीं रखी जाती वह बहुत प्रयोगों का ज्ञान है। जिन्हा भी प्रयोग के सम्बन्ध में यही बात है।

जो सिद्धान्त अन्य प्रयोगों के लिए हैं, वही शरीर के लिए भी पूर्ण रूप से लागू है। कुछ लोग का क्याल होता है कि सफाई प्रयोगों के लिए की जाती है, और जो लोग इस प्रकार का विचार रखते हैं, वे लोग शरीर का प्रयोग मरना की कोशिश नहीं करते। वे समझते हैं कि प्रयोग प्रयोगों करती जायगी। ऐसा समझना भ्रमना है। उपवास के प्रयोग करने वालों को इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि शरीर की भीतरी और बाहरी सफाई की निरंतर आवश्यकता पड़ती है। जिनके शरीर में सफाई नहीं है, उनको समझ लेना चाहिए कि वे उपवास के प्रयोग से आसानी के साथ लाभ न उठा सकेंगे।

ऊपरी सफाई

सबसे पहले ऊपरी सफाई का समझ लेना चाहिए। नाक के द्वारा, कानों के द्वारा, आँसुओं के द्वारा, नाखूनों के द्वारा और रोम-

फूँफों के डाग शगर के भीतर का मल और विचार दूर होता रहता है।

या ता मज और मूत्र निगालने के लिये प्रमुख अंग होते हैं। विन्तु शरीर की ऊपरी सफाई से अधिक मजबूत राम छिद्रों का है। ममस्त शरीर में दृष्टि-दृष्टि राम छिद्र हात हैं और इन सूक्ष्म छिद्रों के द्वारा पदार्थों के रूप में शरीर का भोग्य मल निकलता रहता है। यदि यह मल निश्चयता से रहे और शरीर के भीतर उसे रूग्णों का अवसर मिले तो वह विष हो जाता है।

इसलिए शरीर का उपरी भाग इस प्रकार स्वच्छ और साफ रखना चाहिए, जिससे भीतरी मल के निकलने में किसी प्रकार की रुकावट न पड़े। विशेष रूप से शरीर के सनस्त अंग नियम एवम इस प्रकार मज-मल धर धाना चाहिए, जिससे चम के ऊपर जमा हुआ मज दूर हो जाय और रोम-छिद्र खुल जाय। स्नान की व्यवस्था इसी उपयोगिता का समर्थन करती है।

भीतरी सफाई

शरीर की भीतरी सफाई बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती है। हम जा कुछ खाते और पीते हैं, उससे बहुत-सा अशुभ विकार और मल के रूप में निकलता है। भाजन के पदार्थों से इन विह्वल अशुभों के निगालने का काम, शरीर के भीतरी छोटे-बड़े अंगों के द्वारा होता है। रक्त, रक्त और रस्य उतारने का कार्य जो हमारे शरीर के भीतर निरन्तर हुआ करता है, उसी के साथ-साथ अनावश्यक अशुभ, विह्वल भाग और मज पृथक् हाता रखा

है। इसका मूल के नाम से पुकारा जाता है। यह मूल अनेक रूप में तैयार होता है। और जसा कि ऊपर बताया जा चुका है, यह शरीर के लिए बहुत घातक और विषमूलक होता है। यह शरीर के भीतर रुकने न पाये और निरन्तर बाहर होता रहे, यह बहुत आवश्यक है।

हमारे शरीर की रचना में एक बहुत बड़ी गूनी यह है कि इस विशेष मूल को शरीर के भीतर से निकालने का काम शरीर के छोटे-बड़े अणुओं के द्वारा स्वयं हुआ करता है। यह विशेषता मनुष्य-द्वारा निमित्त किसी यंत्र में नहीं मिल सकती। जिस प्रकृति ने हमारे शरीर की रचना का है उमड़ा सफाई और खूनी की यह सीमा है। परन्तु हमारा जीवन इतना अशुद्ध होगया है, जिसमें हमारे शरीरके आ-प्रयोग आभाषिक रूप से अपना काम नही कर पाते।

शरीर के भीतर जितने प्रकार का मूल उत्पन्न होता है अथवा शरीर की आरोग्यता के विरुद्ध जो तत्व अथवा पदार्थ शरीर के भीतर प्रविष्ट कर जाते हैं उनका प्रमेजी में फारेन मीटर कहा जाता है। यो ता इस फारेन मीटर के निकालने का काम हमारे शारीरिक अंग करत ही रहते हैं किन्तु हमारी समयहीन जीवन-चर्या के कारण जब वे इस फारेन मीटर को शरीर के भीतर से नहीं निकाल पाते और इस फारेन मीटर को शरीर के भीतर रुकने का मोका मिलता है तो वही से शरीर में रोग की उत्पत्ति होती है। और जब तक यह अशुद्ध मूल अथवा फारेन मीटर शरीर में निरुच नहीं जाता, तब तक शरीर में उत्पन्न हुआ रोग चाहे

यह किसी प्रकार का भी नया १११, ११२ र नहीं हो सकता। शरीर-आरोग्य के प्रभिया का इस बात से अचरी तर्क समझ लेना चाहिए और यह जान लेना चाहिए कि इस पद्धति विपाक मत का शरीर के भीतर से निरालने के लिए ही उपवास के प्रयोग किये जाते हैं।

४-रोगों की उत्पत्ति

रोग हमारे ऊपर किर्मा का अन्वेष नहीं है। वरिष्ठ हमारी भूलों और हमारे अपराधों का दण्ड स्वरूप है। जिन प्रकृति ने हमारी रचना की है, उसी प्रकृति ने अपना रचना का कुछ नियम भी बना रखा है। जब हम उसका पालन नहीं करते तो तब दण्ड पाने हैं जो हमें इस दण्ड का नाम है रोग।

—टा० १० एगलस थामसन

रोगों के समझने में लोग बहुत बड़ी गलती करते हैं और उस गलती में आड़े नहीं बहुत बड़ी सख्या में लोग सम्मिलित हैं। गलत क्या है, इस बात को यदि लोग समझ सकें तो वे कभी राग नहीं रह सकते।

प्रायः लोग बीमार होने पर अपने पूरे जन्मों का फल सोचते हैं। और साथ ही यह भी समझ लेते हैं कि हमें इन कष्टों का भोग करना ही पड़ेगा। इस निश्चय के अनुसार वे अपने आपको, अपने भाग्य को और कभी-कभी ईश्वर को कासा करते हैं। उनका यह कासना और इस प्रकार विश्वास करना एक बड़ी नासमझी से भरा हुआ है। इतनी बड़ी नासमझी कि जिसको साचकर, उन लोगों की अज्ञानता पर तरस आता है।

रोग, अपराधो का दण्ड है

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, हम अपने खाने-पीने में, रहन-सहन में और दैनिक जीवन चर्चा में जब प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध चलते हैं, तो हम स्वयं अपने शरीर के साथ अन्याचार करते हैं। और उभ प्रकृति के साथ अन्याचार करते हैं, जिम्मे हमारी और हमारे जीवन की रचना की है। यही हमारा अपराध है और इसी अपराध के फलस्वरूप हमको दण्ड मिलता है। जो दण्ड मिलता है, उसी का नाम है—रोग।

ग्याने पीने में, रहन-सहन में और आचार-विचार में जा हम भूलें करते हैं, उनका तत्क्षण हमें दण्ड मिलता है। पूर्व जन्मा के अपराधों का दण्ड नहीं मिलता और इसलिए नहीं मिलता कि दण्ड देने वाली प्रकृति इतनी निबल नदा है कि हम इस जन्म में अपराध करें और साठ वर्षों के उपरान्त प्रकृति हमें उसका दण्ड दे। यह किलासफी न तो सत्य है और न उस पर विश्वास करने की आवश्यकता है कि रोग हमारे पूर्व जन्मा के पापों का फल है।

हमको इस बात का विश्वास होना चाहिए कि प्रकृति में शक्ति है और उसी शक्ति से हमारे आजके अपराधों का दण्ड कल ही मिल जाता है। कभी-कभी तो हम प्रात अपराध करते और सायनाल को दण्ड पा जाते हैं। यही नहीं, प्राय इससे भी जल्दी हमको फल मिल जाता है। ऐसा देखा जाता है कि

सादकाल विना ही प्राविशरता से अधा भोजन कर लिया और रक्त क, पाके क "नया" पेटे पत्र उने "गार" या प्राया । इस प्रकार हारी भूला वा फल तुम्हें हमरा मिलता है ।

रोग उत्पन्न होने का क्रम

"हमारा कठ प्रकार का जानाभा क दस्तु "नया ग र म राग उत्पन्न पाता । विस्तत "मार शार का रच । वा ' उक्त नगी चरता है उनका रचना "ा य" शरार रागा " शर नष्ट भ्रष्ट वा । उमन एफ मुन्पर रचना नी है अर उत शरार का सग तन्मुम्न पनाय रचन क िण प्रती मन्वी व्यदम्न नी है । शरीर रागा न हा इसक लिए मन म्बय प्रपन्ना पर रचा है । शरीर क विगठन पन तत्र म्मुद्र अपरापर पर । लगत हे ता उनका विगार "मार शरार न म्बय पन लगता है ।

रोग "रत पर" पात नाखे पर प्रमश विचार करना य पर पुत्र "नर"यन वात पडता है—

(१) जब पाना उम प्रकार की चीजा का ग्याग जाता है, जिन्से शरीर की पावन-शक्तिया पचात क काम नहीं कर पाती ता वही ने शरीर में विगार उ पत्र जाता है । और जब यह अन्न-म्या क्रमश चलती है जिमके फलस्वरूप ग्यया हुगा भाजन ठीक-ठीक पचने नहीं पाता तो ग्याने वा जो भाग 'ट में विना पचे हुए रह जाता है वह राग उत्पन्न करता है ।

(२) मनुष्य जा ग्याना ग्याता है, उन ग्यान्-पदार्थों में पेट के भीतर जा विवृत्त अशा रह जाते हैं, इनको शरीर की सफाई

करने वाले अथवा शरीर से बाहर करते रहते हैं किन्तु जब उनका कुत्र अश रुक जाता है और उस रुके हुए अश में रोड कुत्र न उद्वृद्धि हाने लगती है तो रुका हुआ विकृत अश सड़ कर जहर बनने लगता है और तरह-तरह के रोगों के उत्पन्न होने का कारण होता है।

(३) भूय से अधिक जल भजन कर लिया जाना है तो पचाने का काम करने वाज छूटे-छूटे अणों पर एक भारी वाम्ना पड जाता है और अग्निक्रिय करने के कारण उनमें निमलता आजाती है, निमल कनस्वरूप यदि दृमरे दिन हत्का भोजन न किया गया अथवा गाना न खाया गया तो पचानेवाले अणु पचाने का काम न कर पाए, इसमें राग उत्पन्न हात है।

(४) शरीर के अन्तर में अनेक मार्गों से मल मूत्र और विचार विचारा रहते हैं। यदि इस निवामी में अन्तर पडता है तो मनुष्य रागी हाता है।

(५) वायु मनुष्य के जीवन का सबसे अग्निक्रिय आवश्यक और महत्वपूर्ण अश है। लज्जिन पण वायु जा शुद्ध अणु ताजी हो। निम प्रकार शुद्ध वायु हमारे जीवन की है उमी प्रकार दूषित वायु हमारे भीतर घातक राग उत्पन्न करती है।

(६) नियमवृत्त हमारा सूर्य की धूप की आवश्यकता पडती है। निमक शरीर का सूर्य की धूप नहीं मिला करती, उनके शरीर में राग उत्पन्न हात है।

(७) राग मनुष्यो के साथ शारीरिक सम्बन्ध होने के कारण राग उत्पन्न होता है ।

(८) राग माता-पिता के रागों का प्रसार उसकी सतन में रोग उत्पन्न करता है ।

इन प्रकार अनेक कारणों से शरीर में राग उत्पन्न होता है । चित्तने ऊपर जारण त्वाय मत्र हे उन चरमा नाराश यह हे कि शरीर के अन्तर चर करने मटर या प्रितानाय द्रव्य रकता है ता उमहा रफायर से राग उत्पन्न होता है । इस बात का यहाँ पर भली भाँति स्पष्ट कर देना है ।

त्रिजातीय द्रव्य का विषमय प्रभाव

शरीर में ऊपर बताये हुए त्रिजातीय द्रव्यों से जो दूषित अणु अप्रत्या प्रसार इन्द्रिया जाता है, मन का रोग मटर या प्रितानाय द्रव्य कहते हैं । मनसत राग की एक मात्र जड़ यन् त्रिजातीय द्रव्य है । शरीर में इसका निकलना राग का प्रसारण करता है । यदि मनुष्य को इस त्रिजातीय द्रव्य के साथ सम्बन्ध है तो कारी हो जायता व अन्त शरीर में राग उत्पन्न होता है ।

ऊपर जसा कि बताया जा चुका है शरीर में त्रिजातीय द्रव्य के सम्बन्ध में भली प्रकार समझना चाहिए । यह मन, त्रिजातीय द्रव्य जय शरीर में प्रसारित होता है । एक प्रकार से उत्तम पैदा होता है । गर्मी उत्पन्न हो जाने पर त्रिजातीय द्रव्य का प्रसारण होता है ।

शरीर के विभिन्न अंगों की तरफ अग्रसर होता है। यही उसका आक्रमण है। जिस समय उसमें गर्मी पैदा हो जाती है, उसी समय उसका विषमय प्रभाव काम करने लगता है। और अपना स्थान छोड़कर वह जिस अंग पर आक्रमण करता है, उसी अंग में घातक व्याधि उत्पन्न हो जाती है।

विजातीय द्रव्य के इस प्रकार और आक्रमण से जो व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, उन्हा का मस्तक-पीडा, पेट में पीडा, प्पर जुकाम, फोडा, ग्वासी, ग्वा राज आदि-आदि रोगों के नाम से पुकारा जाता है। जितने भी रोग हो सकते हैं उन सब का यही एक मात्र कारण है। यदि विजातीय द्रव्य के विष का शमन किया जा सके, अर्थात् शरीर के भ्रतर से विवृत मल का निकाला जा सके तो उसी में गर्मी का शमन हो सकता है। इन विकारों का मिटाना और शरीर का ग्वादा करना, उपवास का उद्देश्य होता है।

५-रोग और उसका निवारण

यह उड़े हुए भी जान है कि रोग तब तक उभरी वास्तविकता को समझने वाला बहुत कम व्यक्ति-रूप मिलेगा। हाँ, यह है कि अटपटोंग के विश्वास का लहर लागू रगा जाते हैं। जिन लोगों के पास पैसा होता है, वे चिकित्सा का प्रयत्न करते हैं किन्तु जिनके पास पैसा नहीं होता, वे उचार रोगों का उचार दुःख केला करते हैं।

रोगों के समय में किन-किन प्रकार की भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुई हैं, इसके समय में यहाँ अधिक विद्यन की आवश्यकता नहीं है। यह बहुत साधारण बातें हैं। इसलिए उन पर अधिक प्रकाश डालना हमारी समझ में अधिक उपयोगी नहीं मालूम होता। अतएव जो बातें अत्यन्त साधारण और आभासी हैं, उनका साधारण स्पष्टीकरण करते हुए उन मनावृत्तियों पर प्रकाश डालना है, जिनके द्वारा मनुष्य-जीवन समय में पड़ा हुआ है। निर्धन और अशिक्षित लोगों के समय में यही भ्रान्तियाँ रहते हैं। उनका ऐसा विश्वास है कि भगवान ने जो काट लिया है, उसका भोग किए बिना उन्हें कैसे उच सक्ता है। लोगों का यह भी विश्वास होता है कि रोग एक मियाद का लेकर आते हैं और जब उनका समय समाप्त हो जाता है तो वे अपने आप समाप्त हो जाते हैं। लोग कहा करते हैं कि जब उसे अन्धा होना होगा

सभी वह अचूक होगा। चिन्मा को ज्ञान या न की जाय। लोग की इन भ्रान्तियों का कारण उनकी शिक्षा और उनका अज्ञान है।

वर्तमान चिकित्सा

रोगी की चिकित्सा करने के लिए जा सामान उपस्थित हैं वे हैं—वैद्यों हस्ती और डॉक्टरों के द्वारा। शहरों में इन साधनों की कमी नहीं है। यहाँ, हस्ती और डॉक्टरों का दूरानें स्थान स्थान पर दिखाए देती हैं। छूटे छूटे शहरों में लेकर, बड़े बड़े शहरों तक चिकित्सा करने वाला का भरमार हाथी है।

चिकित्सा के इतने ही सामान शहरों में नहीं हैं। घनियों को उत्तारता से और भी गेने साधन शहरों में मौजूद हैं, जिनसे साधारण लोगों की कठिनाइयाँ का सरल क्रिया गया है अर्थात् प्रत्येक शहर में समाज आस्पताल और दातव्य चिकित्सालय खुले हुए हैं। इस प्रकार का चिकित्सा करने वाले बड़े बड़े सरकारी अस्पताल भी मौजूद हैं। इन सब सामानों के द्वारा शहरों में चिकित्सा की जाती है और कराई जाती है। जो शहर जितने ही बड़े हैं, वे सामान उतने ही अधिक वहाँ मौजूद हैं। परन्तु देहातो की दशा इससे भिन्न है। यहाँ वैद्यों और हस्तीओं की कमी है। यदि सीमागत से नहीं पर कोई है भी तो वह हाईकोर्ट के प्रसिद्ध वकील की हैसियत से अपने परिश्रम का पुरस्कार लेता है।

जा कुद हो वय हनीमा पोर टन्दरो के द्वार चिकित्सा का प्रबध समाज मे बहुत निनो मे चला आरहा हे ।

रोगों की वृद्धि

रोगों की चिकित्सा करने वालों की इनकी सख्या होने पर भी समाज रोगी है। देहाता मे हनीम और वय नहीं है यह कहा जा सकता है। म्तिु शहरो के सत्र मे ऐसा नहीं कहा जा सकता। फिर समाज के रागी होने का कारण क्या है ? यह कहना भी अनुचित न होगा कि देहातो की अपेक्षा शहर अधिक रोगी हैं। यदि यह बात सही है तो इसके दो कारण है कि नीराग रहने के लिए जिस प्रकार के जीवन की आवश्यकता है, शहरों में उसका निरुल अभाव है। और दूसरी बात यह है कि उत्तमान चिकित्सा-प्रणाली कुद ऐसी दूषित है, जिससे रोगों की सख्या घटने के बजाय बढ़ रही है। यह बात देहातो की दशा को देख कर और भी कही जासकती है और यदि उम पर नती प्रचार निचार किया जाय तो कोई भी निचारशील आदमी इस बात को स्वीकार करेगा।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि लोग रोगी होते है, उनका इलाज भी होता है और वे रोगी भी बने रहते हैं। धर्मार्थ दयाखाने ता मेले की तरह भर ही रहते हैं। जा रागी वहा चिकित्सा कराते हैं, वे उन अ.पथालया के बरानर रागी बने रहते हैं। शहरो की तो यह दशा हो गयी है कि लोगो के सुभीत के

निष्पत्ति के लिये चिकित्सात्मक गुणों का प्रयोग, उपशान्त के लक्षणों में उपाय ही रोग उबर जाने दे। इसका कारण क्या है ?

चिकित्सा या व्यापार

वर्तमान चिकित्सा-प्रणाली एक प्रकार का व्यापार है चिकित्सक का उद्देश्य अपना व्यापार का दृष्टिकोण में रखकर चिकित्सा करनी पड़ती है। यह ठीक है कि चिकित्सक, रोगी का आशा करना चाहता है। किन्तु समान रोगी न रहे इस बात का ध्यान नहीं है। फेरल इतने। से इन व्यापारिक चिकित्सकों की मजबूती का पता चल सकता है। क्या कोई और बात सच है कि जिस चिकित्सा का उद्देश्य व्यापार है, उसका फल मियाँ समझे कि समान में रोगों की वृद्धि है, और क्या वा सचता है ?

जो चिकित्सा समान में बहुत पहले से चली आ रही है उसका रूप और उद्देश्य दिन-प्र-दिन व्यापारिक होता जाता है। यदि आप कोई सरकारी जाति इस प्रकार का बन जाय, जिसका अनुसार चिकित्सा में कोई भी रुपया न लेसकता है, न देसकता है तो थोड़े ही दिनों में उमर यह फल होगा कि चिकित्सकों की संख्या घट जायगा और चिकित्सा करने वालों की संख्या के साथ साथ रोगियों की संख्या भी घट जायगी।

रोगों की वृद्धि और वर्तमान चिकित्सा

यहाँ पर इतना अधिक ध्यान नहीं है कि नममें भली प्रकार इस बात का प्रकाश डाला जायके कि समान में रोगों की वृद्धि

का एक मात्र कारण, मोजूना व्यापारिक चिकित्सा है। फिर भी, हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम यहाँ पर इस बात को स्पष्ट करें कि जा चिन्तिमा रूप से लिए गयी जाती है, उसके द्वारा समाज को न राग उठाने की भावना व्यर्थ है।

जा चिन्तिमा हमारे समाज में मोजूना है, उसके सत्र में अधिक साधने के लिए हमें कचहरी के वकील का स्मरण होता है। जब कोई आत्मीय किसी अपराध में अपराधी होजाता है तो वह अचलत के विषय के अनुसार दण्ड से बचने के लिए किसी वकील की शरण लेता है और उम्मा वह वकील एक लड़के रूप में उम्मा उचाने की चष्टा करता है।

उम्मा की इस सहायता का यह फल नहीं होता कि अपराधी सजा से मुक्ति पावे व जा भविष्य में उन अपराधों से सावधान रहता है। हाता यह है कि वकील अपराधियों को उचाने रहते हैं और अपराधी परापर अपराध करते रहते हैं। दण्डों और बन्धों के सत्र में भी यही बात है। लागू भीमार हाते रहते हैं, चिन्तिमा उनको दण्ड करते रहते हैं। रागी अन्धे होते हैं और फिर भीमार होते हैं। चिन्तिमा ही वषट्पा में उचाने के लिए भी आर मेरुडों रुपये व्यय करने के परचान् भी रागिया को इस बात का ज्ञान नहीं हाता कि हमारे रोग का कारण क्या है।

चिन्तिमा की व्यापारिक मनोवृत्ति ने चिन्तितों को पूर्णरूप से व्यापारिक बना डाला है। इस मनोवृत्ति और उद्देश्य के फल स्वरूप समाज कभी भी नीरोग नहा हो सकता। उसको नीरोग

द्वारा का एक ही मार्ग है और वा यइ है कि उन व्यापारिक चिकित्सा के प्रति लागू का अक्षरान्त उपत्र हो।

मगो चिकित्सा व दा ही रूप हो सन्ते हें। या ता लागों का रागा का ठीक-ठीक ज्ञात हो और उमक वा प्राणिक नियमों से उनके रोगों का निवारण हो। और दूसरा यह कि रोगों के उपत्र होने पर स्वाभाविक रूप से उनको अन्द्रे हाने दिया जाय। यदि समाज के सामने यही दा मार्ग रह जाय तो समाज सरलतापूर्वक आगेय लाभ कर सकता है।

६-प्राचीन काल में उपवास

हमारे जीवन के साथ उपवास का क्या सम्बन्ध है इस प्रश्न को वर्तमान युग का विज्ञान, समान के समान उत्तरात्तर स्पष्ट करता जा रहा है। परन्तु यह नया कहा जा सकता कि हमारे पूर्वजों में उपवास का कोई ज्ञान न था।

इसके सम्बन्ध में यदि प्राचीन काल के जीवन का पता लगाया जाय तो बहुत नई बातें जानने को मिलती हैं। यद्यपि इस युग में और प्राचीन काल के युगों में बहुत अन्तर हागया है और यह अन्तर प्रसार बढ़ता जा रहा है, लेकिन जीवन का जहाँ तक सत्य से सम्बन्ध है, वह प्राचीन काल में भी था, इस बात में भी है और भविष्य काल में भी रहेगा। इतना अन्वय होता है कि उसके कहने-सुनने और समझने में अन्तर पड़ जाता है। उसका वाच्य रूप बदल जाता है। उसका प्रमुख रूप, सक्षिप्त और विलीन हो जाता है, परन्तु वह रहता अवश्य है। सत्य की यही वास्तविकता है और यही उसकी व्यापकता है।

यही बात उपवास के सम्बन्ध में भी है। यह नहीं कोई कह सकता कि हमारे पूर्वजों में इसकी कोई जानकारी नहीं थी अथवा प्राचीन काल में इसका कोई महत्व न था। जिनको प्राचीन काल के ग्रन्थ पढ़ने को मिले हैं, वे जानते हैं कि उपवास जैसी महत्व-

पूर्ण बातों का ज्ञान प्राचीन-से प्राचीन काल में मौजूद था और यह परावर ममान में चला आया है।

प्राचीन काल में उपवास का रूप

जैसा कि ऊपर लिखा है, समाज का वर्तमान काल, प्राचीन काल से भिन्न हो गया है। यह भिन्नता न केवल हमारे देश में हुई है, किंतु ससार के सभी देशों में यह भिन्नता पायी जाती है। प्रत्येक देश और जाति का इतिहास बड़ी तेजी के साथ बदल रहा है और इस परिवर्तन में मानव समाज प्राचीन काल से हट कर जाने कहीं-से कहीं हो गया है।

प्राचीन काल के जीवन में उपवास का महत्व धार्मिक प्रथों में पाया जाता है। उन दिनों में समाज के शुभचिंतकों ने एक मात्र धर्म को ही महत्व दे रखा था और जितनी बातें उस जमाने में हितकर और शुभचिंतना की होती थीं, उनको धार्मिकता के रंग में रंग दिया जाता था। उपवास के समय में भी यही हुआ था। अद्यपि आजकल के विज्ञान ने धर्म के साथ उपवास का कोई संबंध नहीं रखा, परन्तु प्राचीन काल में धर्म को पूर्णतया धार्मिक रूप दे दिया गया था। और इसीलिए उपवास की अधिक बातें उन्हीं जातियों के मनुष्य में पायी जाती थीं जो लोग धार्मिक मनोवृत्ति के होते थे।

धार्मिक लोगों में उपवास नित्य की दैनिक चर्या में परिणत हो गया था। लोग रविधर को सूर्य की उपासना किया करते थे। इसी

प्रकार भिन्न भिन्न देवताओं की पूजा-अर्चना के साथ, उपवास अनिर्वाय हो गया था। ईश्वर-भक्ता के लिए उपवास की आवश्यकता एक अनिर्वाय आवश्यकता बन गई थी।

यदि इन जातों की अविज्ञानता की जाय तो इस निष्पत्ति पर पहुँचा जा सकता है कि देवताओं और ईश्वर की पूजा-आराधना का सन्तव उपवास में उद्भव भी नहीं है। शरीर-शासन के निमित्त उपवास या महत्व माना गया था और उस महत्व को ईश्वर पूजा में सम्मिलित कर लिया गया था। प्राचीन काल का जीवन धामकृता के रग में रगा हुआ है और उमर रग में उपवास का बड़ी स्थान था जो स्थान दाल में नमक का होता है।

इस प्रकार उपवास हमारे प्राचीन काल में धार्मिकता में हिलमिल गया था। और जो लोग उपवास की मान्यता किया करते थे, वे लोग साधु और तपस्वी कहलाते थे। इसमें सन्देह नहीं कि इसको धार्मिकता का रूप देकर समान में उपवास को महत्वपूर्ण माना गया था।

उपवास की व्यापकता

ऊपर की पक्तियों में मन्त्रों में यह बताया गया है कि उपवास मनुष्य-जीवन की धार्मिकता का एक अंग हो गया था। किन्तु उससे भी अधिक उपवास को व्यापक बनाने की चेष्टा की गयी थी। प्रत्येक देश और जाति में त्योहार मनाये जाने हैं और उन त्योहारों में साधारण कोटि के स्त्री-पुरुष और बालक-बालिकाएँ भाग लेती हैं। उपवास के पक्षपातियों ने, उपवास की सार्थकता

और व्यापकता के लिए त्योहारों के साथ उनका संबध जाटा था, इस सूक्त की जितनी भी प्रशंसा की जाय, वह थोड़ी है । समाज में किसी बात की व्यापकता के लिए और उसके स्थायीता इससे अच्छा साधन कदाचित नहीं मिल सकता । यदि हम अपने त्योहारों की आरंभ और उनकी प्रालोचना करें तो हम समझ सकेंगे कि उनका अधिकांश भाग उपवास के महत्त्व से भरा हुआ है ।

जातीयता को स्फूर्ति और धार्मिकता के भाव जागृत करने के लिए त्योहार हमारे जीवन में जाड़ का काम करते हैं । छोटे छोटे बालकों से लेकर साधारण और असंवारण स्त्री पुत्रों तक लोगों में अपने त्योहारों के लिए कितना गर्व और गुमान पैदा होता । उपवास का उनके साथ संबध जोड़कर, प्राचीन काल के उपवास-समर्थकों ने एक गजब का काम किया था जो उपवास को सर्व-साधारण में व्यापक बना सकने में पूर्णरूप से सफल हुआ ।

उपवास पर अन्य जातियों के पूर्वज

हिन्दू जाति की प्राचीन संहिता में जिस प्रकार उपवास का महत्त्व मिलता है, ठीक उसी प्रकार अन्य जातियों में भी हम उसका विकसित रूप पाते हैं और ठीक उसी प्रकार पाते हैं, जिस प्रकार हिन्दू-जाति में । ऊपर यह बताया जा चुका है कि प्राचीन काल, धर्म की प्रधानता का समय था । धर्म की यह प्रधानता न केवल हिन्दू-जाति में थी और न केवल भारतवर्ष में थी, बल्कि संसार की अन्य सभी जातियों में भी यह उसी प्रकार थी जिस

प्रसार सिन्धु चानि मे । उन उमाते के इतिहास इस बात को स्पष्ट बताते हैं ।

सिन्धुअः की भक्ति मुसलमानों में भी अनेक स्थानों के लिए फकीरों का भारी प्रभाव है । अरब फकीरों की वाचन-चर्या में अनेक प्रकार से उपवास निरूपित गया था । मुस्लिम मत में रोजा का बहुत बड़ा महत्त्व है—उपवास । वाचन, पुस्तकें इत्यादि में मुसलमानों का महत्त्व देव ही है, सिन्धु अर्थात् वाचन भी मन्त्र ब्रह्म के लिये उनके मत में तरंग-तरंग की भाँति फैला गया था । उनमें रमजान का एक महीना जवाब में अरबों की मन्त्रों का प्रयोग मुसलमानों को रोजा रखता है । उन मन्त्रों का उच्चारण के लिए जम्पूई दिन निराहार रहने और पूजास्तक पंचमू के लिए रोजा खालने है ।

मुस्लिम त्योगों में भी इस राजे का बहुत महत्त्व है सुरम के दिन में बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ मुसलमानों में रोजा मनाया जाता है और रात्ता मनाया के लिए पुस्तकें इत्यादि का नाम मन्त्र है । अर्थात् लहर उठो तक श्रद्धा लियों से लहर पुस्तकें तक—मुसलमानों में यह वाचन भावना अन्तर्गत जागे के वाचन नाम करती चली आ रही है ।

ईसाइया का गार्मिक जीवन में भी उपवास को अविनाश स्थान मिला है । ईसाई धर्म में जहाँ अन्य बातें बताई गयी हैं वहाँ उपवास का भी महत्त्व बताया गया है । उन लोगों में भी कुछ ऐसे

दिन होते हैं, जिनमें ईसाई पूर्णरूप से उपवास करते हैं और कुछ ऐसे त्योहार माने जाते हैं, जिनमें वे उपवास के राश्ट्र पदार्थों का सेवन करते हैं।

यह बातें तो हुईं, संसार की बड़ी बड़ी जातियों के समझ में। कुछ ऐसी जातियाँ भी हैं जो इस सभ्यता के युग में समाज से पृथक् हैं। उनमें न शिक्षा है और न जीवन का विकास है। परन्तु उनमें भी धर्म की अनेक प्रकार बातें मानी जाती हैं और उनकी धार्मिक बातों में उपवास को बहुत महत्त्व मिला है। वे उपवास को ईश्वर के निमित्त एक तपस्या समझते हैं और भिन्न भिन्न प्रकार से साधना किया करते हैं।

ऊपर की समस्त बातों की जड़ में एक ही बात है और वह है, शरीर-शोधन के सबब में उपवास की प्रथा। वास्तव में उपवास शरीर के विकारों का सशोधन करता है। इसके सिवा न तो कसब धर्म से कोई सबध है और न ईश्वर की आराधना से।

७-भोजन उसके कार्य और परिणाम

उपवाम के प्रयोग, प्राकृतिक चिकित्सा का प्रधान अंग है और प्राकृतिक चिकित्सा के पक्षपातियों को प्राकृतिक चिकित्सा की बातों के साथ-साथ, किंतु यथासंभव उसके पूर्व भोजन संबंधी बातों का जानना बहुत आवश्यक है। जब तब विचार के कारणों का ज्ञान नहीं होता, तब तक उसके निवारण की ठीक ठीक योग्यता नहीं आसती।

हमारे जीवन का बहुत बड़ा मूल्य है, और यह मूल्य वहाँ पर व्यर्थ हो जाता है, जहाँ पर हमारा जीवन, सुख और आनंद के स्थान पर दुःखमय बन जाता है। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि जीवन का सुख, आराम्य जीवन पर निर्भर है और आरोग्य जीवन स्वास्थ्य संबंधी बातों की जानकारी है। जिनको इन बातों का ज्ञान है—जो शरीर संबंधी विज्ञान के पंडित हैं, वही वास्तव में आरोग्य हैं और जीवन का सुख उन्हीं तक है।

अतएव जो लोग अपने शरीर को नीरोग बनाय रखना चाहते हैं और जो प्राकृतिक चिकित्सा के महत्व से लाभ उठाना चाहते हैं, उनको सबसे पहले यह जानना चाहिए कि भोजन क्या है और उसके साथ हमारे शरीर का क्या संबंध है ? इन बातों की जानकारी होने पर ही उससे ठीक-ठीक लाभ उठाया जा सकता है।

भोजन की आवश्यकता

साधारण रूप से हम लोग यही समझते हैं कि भोजन के द्वारा हमारे शरीर में शक्ति, मांस और चर्बि जतता है। इनके द्वारा शरीर का शक्ति तथा सामर्थ्य प्राप्त होता है। यह शक्ति और सामर्थ्य ही हमारे शरीर की, जीवन शक्ति और प्राण-शक्ति है।

डाक्टरों का मत इस जानकारी का समर्थन करता है। इस बात के स्मरण रखने की आवश्यकता है कि चिकित्सा के नित्ये मास पाय ना है, वे विशेष रूप में वैद्या, हकीमों और डाक्टरों से सत्य रखन है। इन सभी प्रकार का चिकित्साओं से प्राकृतिक चिकित्सा अनेक बातों में मतभेद रखती है। और यह मतभेद कहीं कहीं पर इतना विरुद्ध होजाता है जो दाना के सिद्धान्तों का एक दूसरे से बहुत दूर कर देता है।

हॉ, तो डाक्टरों, वैद्या, हकीमों के मत के अनुसार भी शरीर में भोजन के यही काम होते हैं। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा के विशेषण जब भोजन के सूक्ष्म तत्वों की आलोचना करते हैं, वहाँ पर वे बताते हैं कि भोजन के द्वारा शरीर में दो प्रकार के कोष (Cells) पैदा होते हैं। श्वेत और लाल। ये दोनों प्रकार के कोष ही हमारे जीवन-शक्ति हैं। इसके सिवा, भोजन का दूसरा कोई विशेष सत्य नहीं है।

प्राकृतिक चिकित्सा और दूसरी चिकित्साओं में इस प्रकार का कुछ सूक्ष्म मतभेद अवश्य है। परन्तु प्रधान रूप से दोनों

प्राकृतिक चिन्तिता का मत ऐसा नहीं है और न हमारा ही उस पर विश्वास है। प्राकृतिक चिन्तिता के मत से सीधे जीवन-तत्व तैयार होते हैं और तैयार होते हैं, प्रत्येक क्षण—प्रत्येक समय। यद्यपि हमारी इस पुस्तक के विषय से इस प्रसंग का विशेष संबंध नहीं है, किंतु हमारी समझ में इसका स्पष्टीकरण आवश्यक है।

ऊपर हम बता चुके हैं कि कार्य करने में जीवन-तत्व नष्ट होते हैं। हम जो कुछ भी करते हैं, इन्हें तत्वों के बल पर करते हैं और हमारे कार्य करने के द्वारा ये तत्व नष्ट होते रहते हैं। उठना-बैठना, चलना-फिरना, बात करना, अधिक बोलना, सोचना आदि-आदि कामों से लेकर परिश्रम के जितने भी कार्य हैं उनसे ये तत्व नष्ट होते रहते हैं। जो कार्य जितना ही परिश्रम लेते हैं, ये तत्व उनके द्वारा उतने ही अधिक नष्ट होते हैं। जब लगातार कुछ काम किया जाता है, तो उसके बाद जो थकावट अनुभव होती है, उसका यही कारण है कि जो तत्व शरीर में मौजूद थे, वे अधिक सत्या में नष्ट हो गये। ये सचित तत्व ही हमारी शारीरिक शक्ति के रूप में हैं। जब ये तत्व अधिक परिमाण में नष्ट हो जाते हैं तो दूसरे अर्थ में हम अपने शरीर की सचित शक्ति को खो बैठते हैं। इसलिये शरीर में अशक्ति उत्पन्न हो जाती है। इस शक्ति हीनता के आने पर हमको विश्राम की आवश्यकता होती है। विश्राम से उपरोक्त तत्वों के नष्ट होने का काम बंद रहता है और उनके तैयार होने का काम जारी रहता है। लगातार कुछ देर

वेधाम कर लेने के पश्चात् हमारे शरीर में फिर शक्ति का जन्म होता है अर्थात् नवीन तत्वों के तैयार हो जाना और एकत्रित हो जाने पर हममें फिर काय-शक्ति पैदा हो जाता है। हम जितनी ही देर विश्राम करेंगे, उतनी ही अधिक शक्ति हम प्राप्त हूँगा।

शरीर में भोजन की क्रिया

जब हम भोजन करते हैं उमकी क्रिया, भाजन क, मुँह में पहुँचते ही आरंभ होजाती है। मुँह में कौर आन हा दाँत पीसने का काम करने लगते हैं। और इस पिसाइ में मुँह के अंदर जो लार उत्पन्न होती है, वह सहायता करती है। भोजन की क्रिया में इस लार का बहुत महत्व है। यदि इस लार का मिश्रण न हो तो पेट के भीतर जाकर भाजन क पदार्थों का पचना कठिन हो जाय।

मुँह के जगड़ों के नीचे दोनो जगला में जो ग्रन्थियाँ होती हैं मुँह चलाने पर इन ग्रन्थियों से लार के रूप में पानी-सा निकलता है और यह पानी कौर में दाँतों के द्वारा पिसते समय मिश्रित होजाता है। यह लार जितनी ही अधिक कौर में मिश्रित होती है, उतना ही यह उसको अधिक पाचन-योग्य बनाती है। जो लोग देर तक कौर चबाया करते हैं, उनके भोजन में लार का मिश्रण अधिक होता है। और यह घात भोजन की पाचन-क्रिया के लिये बहुत ही उपयोगी है। इसलिए इस घात का ध्यान रखना चाहिए कि कौर को जल्दी-जल्दी निगलने के बजाय देर

तक चराना चाहिए। मुँह के नीचे अन्न मार्ग की एक नलिका होती है, उसी से होकर मुँह के आगे भोजन फिसलकर नीचे जाता है। उस नलिका में एक फिल्ट्रो हाता है, और वह फिल्ट्र एक प्रकार का रस देती है। उस रस से मिलकर भोजन का अंश नीचे उतरता है।

इस मार्ग में होकर अन्न आमाशय में पहुँचना है। यह आमाशय पसूनियों से लेकर नाभि तक बना हुआ है। आमाशय में भोजन का पहुँचते ही एक प्रकार का खट्टा रस उपन्न होता है उस रस के, अन्न में मिलते ही उसके पचने का कार्य आरम्भ हो जाता है। आमाशय की बनावट मशरूम की-सी होती है और उसका दूसरा सिरा छोटी अंतडियों से मिला रहता है। जहाँ पर उसका सिरा अंतडियों से मिलता है, वहाँ पर मांस का एक टुकड़ा रहता है और उ। टुकड़न का काम यह है कि जन्तु आमाशय में भोजन के पचन की क्रिया समाप्त नहीं हो जाते तब तक वह उसका अंतडिया में नहीं जाने देता।

इन छोटी अंतडिया में कई प्रकार के रस उत्पन्न होते हैं। उनके भ्रमर एक चिम्नी फिल्ट्री होती है और रस गती है। ये रसों भोजन से उने हुए रस को चूमकर यकृत में पहुँचाती हैं। रसों के, रस र्नाच लने पर मल आगे को निस्तार जाता है और वह बड़ी आँतों में पहुँचकर गुण के रास्ते से शरीर से बाहर होता है।

छोटी आँतों बड़ी आँतों से मिली रहती हैं। जन्तु छोटी आँतों का काम समाप्त हो जाता है तो वह छोटी आँतों से बड़ी आँतों में

बला जाता है। इन श्रोतों में एक प्रकार की गति होती रहती है। उस गति से आते निकुडती और फलती रहती हैं। और इसी के द्वारा मल आगे की गतिमानता रहता है। श्रोतों की जब इस गति में तेजी पैदा हो जाती है तो अतिमार का रोग उत्पन्न होता है और जब गति मंद हो जाती है तो प्रवृद्धता का (शुक्रायत हो) जाता है।

शरीर के भीतर, विभिन्न प्रकार के मल

ऊपर भाजन की क्रिया जा रहा है उममें, सत्त्व में यह स्पष्ट क्रिया गंगा है कि भोजन के पदार्थ हमारे पेट में जो पहुँचते हैं, उनसे पाचन क्रिया के द्वारा रस उत्पन्न होता है। उस रस के निष्काल लेने के बाद शेष मल के रूप में बाहर हो जाता है। भोजन से जो रस तैयार होता है उसमें रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद में अस्थि अस्थि से मज्जा, और उसके बाद प्रीत्य बनता है। रस तैयार होने पर उसमें फिर पाचन क्रिया का काम आरम्भ होता है और जब एक तत्व उससे तैयार हो जाता है तो दूसरे तत्व के निर्माण का कार्य आरम्भ हो जाता है। इसी प्रकार प्रीत्य तक प्रत्येक तत्व का निर्माण होता है। और प्रत्येक तत्व के निर्माण में कुछ-न-कुछ मल निकलता है जो शरीर के विभिन्न अवयवों द्वारा पृथक् हाता रहता है।

इस प्रकार हमारे साध पदार्थों से जो मल तैयार होता है, उसने विसर्जन का कार्य शरीर अपने आप क्रिया करता है। इस क्रिया का क्रम बराबर जारी रहता है। यदि कभी उसमें

रुकावट आनाती है ता यह रुकावट अत्यन्त हानिकारक हो जाती है ।

इस प्रकार पाने और पीने के द्वारा जो पदार्थ हमारे शरीर में प्रविष्ट करत हैं उनमें से आवश्यक अश शरीर लेलेता है और शेष अश छोड़ देता है जो मल के रूप में बाहर होता है । मल के रूप में लाग इसी का मल समझा करते हैं, परन्तु इसके सिवा शरीर में और भी मल उत्पन्न हाता है । उसमें हज्जात प्रसारण का काम किया करत है और उनका धरातर क्षय होता रहता है क्षय हो जाने पर मल के रूप में वे पृथक् हा जाते हैं और उनका विसर्जन का कार्य भी शरीर को करना पड़ता है । इस तरह अनेक प्रकार के विचुन अश जो मल के रूप में शरीर से निकलते हैं, उनके विसर्जन के अनेक माग हैं । शरीर के भीतर से लौटने वाले गदो वायु पसोना, पाछाना, मूत्र, थूक और फर, आँसू, नाखून बाल, मवाद, आदि हमारे शरीर के विभिन्न प्रकार के मल हैं । इस मल को शरीर से निकालने में हमारे भीतरी अघयत धरातर काम करते रहते हैं । जब कोई मल बाहर निकलने में सक्षम भीतर ही रुक जाता है तो उसमें विष उत्पन्न हो जाता है और वह अनेक प्रकार के रोगों का कारण होता है ।

८-रोग और अन्य चिकित्साये

उपवास-चिकित्सा अथवा उपवास के द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा का एक मरल और प्रायः सिद्धान्त है जो शरीर में रोग उत्पन्न करनेवाले मूल अथवा विषय विनाश करने का नाम करता है। उपवास के प्रयोगों का नाम चमत्कार के लिए अथवा शरीर का काम नहीं रहा। शिवाय कि शरीर को मरना-साथ शरीर-विज्ञान का महत्त्व बढ़ता जाता है और जितना ही यह महत्त्व बढ़ता जाता है उतना ही लाग उपवास के प्रयोगों पर विश्वास करते जाते हैं।

यह बात अथवा तब प्रसिद्ध हो चुकी है कि उपवास की क्रियाओं के द्वारा छोटे-मटे रोगों में लेकर भयंकर-भयंकर रोग मिटाये जाते हैं और यह भी मानने के लिए लाग विश्वास हुए हैं कि जिन रोगों के दूर करने में दमरी चिकित्सायें असफल हुई हैं उन भयंकर रोगों को—जीर्ण तथा पुराने घातक रोगों को उपवास की क्रियाओं के द्वारा दूर किया जा सकता है। इतना सत्य होने पर भी आसानी के साथ लाग प्राकृतिक चिकित्सा अथवा उपवास की क्रियाओं के लाभ नहीं उठाते। उमरा सत्य से प्रभाव कारण यह है कि उपवास के प्रयोगों में अनेक प्रकार की कठिनाई उठानी पड़ती है। आयुर्वेदिक, डाक्टरों एवं हकीमी दवाओं में लोगों के सामने किसी प्रकार की मझक नहीं रहती।

- कठिनाइया को नयाँ भेजें । रहा परिणाम सा तो युग होगा ही ।
- यह तो स्पष्ट ही है कि अप्राकृतिक चिकित्सा द्वारा न तो रोग का निवारण हो सकता है और न शरीर आरोग्य बन सकता है । इसलिए यहाँ पर यह बहुत स्पष्ट बात है कि जो लोग प्राकृतिक चिकित्सा का अनुसरण करना चाहें वे सबसे पहले शोषधियों के मिथ्या उपचारों को समझ बूझ लें और उनसे अभिश्वास करके प्राकृतिक नियमों पर अपनी श्रद्धा स्थापित करें ।

रोग हमारे शत्रु नहीं है

यहाँ पर कुछ लोगों के सत्रय में शोषधियों के प्रयोग का फल दिखाना चाहत हैं । क्याचिन् उनके परिणाम पढ़कर भूटे उपचारों पर विश्वास रखनेवालों के मन सुन्न मन ।

रोगों के सत्रय में जितना शोषधियों का प्रयोग किया जाता है, वे सत्र भी सत्र रोगों को दूराने का काम करती हैं । प्राकृतिक नियमों के अनुसार यह काम उलटा होता है । ऐसा मालूम हाता है कि रोगों का अथ समझने में ही मतभेद है । पटली बात तो यह है कि रोग हमारे शत्रु नहीं हैं, मित्र होकर वे हमारे शरीर का नाश उपकार करने आते हैं । जब शरीर के भीतर मल सचित हाने लगता है तो उसमें विष उत्पन्न होता है । प्रकृति के नियमों के अनुसार उस मल का निकालना आवश्यक है । यदि वह न निकाला गया और उससे विष की उत्पत्ति हुई तो वह मृत्यु का कारण होता है । इसलिए प्रकृति ने हमारे शरीर के भीतर ही ऐसी

• व्यस्तता का रोगी है कि मल का संचय न होने पाये। किन्तु कि भी जब कुछ मन रुक जाना है और थोड़ा थोड़ा रागर संचित होता रहता है तो उनमें विष उत्पन्न होना है। इस विष के निकालना या रोग प्रकृति ने कर रखा है और उस प्रकृत का ओर से हा राग उपन्न होते हैं जो उन विषों के निकालने का प्रयत्न करते हैं। रागों का यही एक मात्र कार्य है। प्रकृति के नियमों के अनुसार रोग उस विष के निकालने का प्रयत्न करते हैं और जब पूर्ण रूप से विष नष्ट होजाता है तो राग अपने आप विनष्ट हो जाते हैं।

हमारे जीवन में कितनी उन्नती बात है। प्रकृति ने हमारी रक्षा के लिए कितनी व्यवस्थायें कर रखी हैं। वह प्रत्येक भाँति हमारी रक्षा करती है और इस रक्षा के लिए जो कुछ उसे करना पड़ता है हम उसे शत्रु के रूप में देखा करते हैं।

उपर यह लिखा जा चुका है कि औपधिया रोगों के दबाने का कार्य करती हैं। मान लानिए किसी आदमी को जुकाम हो गया है, वह किसी वैद्य के पास जाता है और ऐसी दवा चाहता है कि जिससे उमका जुकाम हलका होजाय। वैद्य जी को तो पैसों से मतलब है। यदि वे कह दें कि हमारी औपधि से तुम्हारा जुकाम बढ जायगा तो शायद ही वह रोगी वैद्य जी के पास फिर बैठ सके। वैद्य जी उस की बात को खोकार कर लेते हैं और औपधि देकर उसके जुकाम को दबाने की चेष्टा करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि उस चेष्टा से जुकाम दब जायगा और रोगी प्रसन्न

रूप देकर भार टानना चाहता है और कोई आदमी उमक पाप कर्मों की रात्र आकर हमको देता है तो वह आदमी हमारे लिए भला हा सकता है या बुरा ? इन प्रश्नों के उत्तर में काइ भी आदमी इस प्रकार की रात्र देने वालों को शुभचिन्तक और मित्र ही कह सकता है । फिर रागों के प्रति हमारे मन में शत्रुता का भाव कैसे उत्पन्न हो जाता है ? ऐसा मालूम होता है कि रोग के समझने में ही भूल होती है । वास्तव में रोग हमारे लिए अनिष्टकारी नहीं हैं । हमारे शरीर में जो विष उत्पन्न हो जाता है, उसकी सूचना देने के लिए प्रकृति की ओर से एक संकेत और सवाद हमको मिलता है और उसका अर्थ यह हाता है कि हम सावधान हो जाँय । संकेत और सवाद देनेवाले का नाम है—रोग ।

यदि हमको शरीर-विज्ञान का ज्ञान हो ता हमें इन रागों का शुभचिन्तक होना चाहिए और प्रकृति की इस व्यवस्था के लिए उसका अनुग्रह मानना चाहिए । बजाय इसके हम राग उत्पन्न होते ही ईश्वर को कोसने लगते हैं । ये समस्त बातें अज्ञानता के सिवा और कुछ नहीं हैं ।

प्राकृतिक चिकित्सा के पद्धतियों को मालूम होना चाहिए कि रोग, हमारे शरीर में विष उत्पन्न होने की सूचना देते हैं । एक ता यह कि हम सावधान हो जाँय और अपने उन कामों को बन्द करें जिनसे शरीर में एकत्रित मल को विष तैयार करने में सहायता मिलती है । और दूसरे यह कि रोग, हमारे शरीर से विष निकालने का काम करते हैं ।

शरीर से विष निकालने का कार्य

चेसा कि उपर लिखा है कि राग शरीर से विष निजालने का कार्य करते हैं, इसको समझने के पहले, यह भर्त्सम नि जान लेना आवश्यक है कि जो विष उत्पन्न होजाता है, उसमें वृद्धि कैसे होती है ?

पहले यह बताया जाचुका है कि कई प्रकार ने हमारे शरीर के भीतर मल बना करता है। और शरीर उमके निकालने का कार्य भी किया करता है। यह मल विशेष रूप से हमारे श्वाश पथरों के साथ शरीर के भीतर पहुँचता है। उम मल के निरालने में जब रुकावट पडती है तो मल सञ्चन ह्वर विष उत्पन्न करने लगता है।

जब शरीर में कुछ मल सञ्चित होजाता है तो हमारे शरीर के भीतर से मल निजालने वाला अंग-प्रत्यंग निर्गल होजाते हैं और वे अपना काम ठीक ठीक नहीं कर पाते। जिस प्रकार किसी मशीन के भीतरी पुरजों में जब मल बैठ जाता है तो वे पुरजे सरलतापूर्वक काम नहीं करते। उस दशा में मशीन का मालिक, मशीन के भीतरी पुरजा की सफाई कराने की चेष्टा करता है। समझदार मशीनमैन उन पुरजों की सफाई करके ही उस मशीन के चलाने का काम लेता है।

यदि वह ऐसा न करे और मशीन की सफाई किये बिना उससे बराबर काम लेता रहे तो मशीन कुछ दिनों में निरुम्मी हो

जायगी। ठीक यही दशा हमारे शरीर की भी है। जब भीतरी पुरजों में मल रुक जाता है तो वे अपना काम करने साथ करने लगते हैं और यदि सचित मल की सफाई न की जाय तो मल से सन्ध रहने वाला हमारे भीतरी पुरजे धीरे-धीरे निरन्तर हाने लगते हैं। उनके निर्धल होने पर मल के विसर्जन का कार्य और भी मद् हो जाता है।

शरीर की जब यह दशा होती है तब वैद्य और डाक्टर उस काष्ठमद्धता या मन्दाग्नि के नाम से पुकारते हैं। यह काष्ठमद्धता शरीर के भीतर रुके हुए मल का परिणाम है। इस दशा में यह सचित मल विष के रूप में बदलने लगता है। इसी समय इस विष को निकालने के लिए रोग पैदा होते हैं। रोग का अचुर हात हो अथवा उसका आभास जान पड़ने पर सन्ध से पहले राना बन्द कर देना चाहिए। क्योंकि इस दशा में मनुष्य जो कुछ खाता है और उससे जो मल तैयार हाता है, उसके निकालने का कार्य ठीक-ठीक नहीं होता। जिसके कारण मल का परिमाण हमारे भीतर बढ़ता जाता है। इससे विष में वृद्धि होती जाती है और इसका फल यह होता है कि रोग को उस विष के निकालने में बहुत अधिक समय लग जाता है।

रोग की असाध्य अवस्था

पाठकों को हमारी बहुत-सी बातों से यह मालूम होगा कि रोग विष को निकालने का काम करते हैं और जब विष, पूर्ण रूप से निकल जाता है तो रोग अपने आप नष्ट हो जाते हैं।

इसके समय में कुछ पाठक पूछेंगे कि जा राग अभाव्य होता है और उपग्राम के बाद भी शरीर का पिण्ड नहीं बढ़ता, उसका कारण क्या है ?

यह प्रश्न उठे गइल का है। उपग्राम के बाद ही नहीं बल्कि राग, जीवन-भर के साथी हाजिर है। उसका कारण है और कारण बहुत स्पष्ट है। ऊपर बताया गया है कि राग उत्पन्न होने पर जब रागी ग्याना नडा बन करता तो शरीर क भतर प्रकृतित मत क सचा प्रात में प्रथम मद्रायता मित्रता है। राग एक तरह स विष क निकालने का साधन करता रहता है और दूसरा प्रार शरीर के भीतर मत संचित होता रहता है। इसका परिणाम यह जाता है कि विष उत्पन्न होने का साधन बराबर जारी रहता है। न विष का कभी अंत होता है और न राग शरीर का पीछा छोड़ता है।

कभी-कभी तो ऐसा होता है कि राग जिस परिमाण में विष के निकालने का काम करत है। उससे अधिक परिमाण में शरीर के भीतर विष उत्पन्न होने लगता है। इसका फल यह होता है कि रोग अपने काय में सकलता नहीं पाते। ऐसी दशा में लोग समझते हैं कि राग बढ़ता जाता है। परन्तु ऐसी बात नहीं है। बात यह है कि विष का परिमाण शरीर में बढ़ता जाता है, जिससे रोगी का वृष्ट उत्तरोत्तर अधिक होता जाता है।

वर्तमान चिकित्सा का कार्य

ऊपर रोगी की जिस दशा का वर्णन किया गया है, वह दश शरीर में रोग उत्पन्न होने की है। अब इसके बाद समाप्त में प्रचलित वर्तमान चिकित्सा क्या काम करती है उसको भी थोड़ा-सा समझ लेने की आवश्यकता है।

पहले भी यह बताया जा चुका है कि औषधियाँ रोगों को दवाने का काम करती हैं। शरीर में उनके दो प्रभाव पड़ते हैं। एक तो यह कि औषधियों के मादक द्रव्यों द्वारा शरीर में उभरा हुआ विष दूर जाना है और कुछ दिनों तक दवा रहकर या तो चरी रोग उत्पन्न हो जाता है अथवा उससे भी भयानक रोग पैदा कर देता है। दूसरा प्रभाव यह होता है कि शरीर में भीतर दवाओं के द्वारा एक विजातीय द्रव्य जाता है। पाठक ऊपर इस बात को पढ़ चुके हैं कि कोई भी विजातीय द्रव्य शरीर के लिए अहितकर ही साधित होगा।

प्रायः लोगों ने देखा होगा कि रोगी अपने किसी रोग में जब किसी औषधि का प्रयोग करता है तो कुछ समय में वह अच्छा हो जाता है और उसके बाद वह फिर उभर आता है। कभी-कभी देखा जाता है कि एक ही रोग अच्छा हो जाने पर भी अनेक बार फिर पैदा हो जाता है। इस बात से और भी स्पष्ट होता है कि औषधियाँ विष का नाश नहीं करतीं, बल्कि उसे दवा देती हैं। वह विष शरीर में मौजूद रहता है और संयोग पाकर फिर खोर पकड़ता है।

प्रायः रागा देने जाते हैं जो किसी घातक बीमारी में बीमार हो गये और दवा करने के बाद उनका वह राग दब गया, परन्तु उसके बाद ही उसमें भी सगीन राग पैदा हो गया। यदि शरीर में मात्र दुःख प्रिय शरीर से निकल जाता तो उसके पश्चात् किसी दूसरे घातक राग के उदय होने की सम्भावना नहीं। यह समस्त बातें स्पष्ट रूप से प्रतीति हैं कि ओपथियों के द्वारा शरीर बीमार नहीं होता परन्तु शरीर रागों का घर बन जाता है।

लोगों ने देखा होगा जो लोग पत्ते-पत्ते हाते हैं आमाती के साथ दवायें करीब मरते हैं, वे प्रायः रागी बने रहते हैं। एक बार, दो बार रागी हो जाने के बाद और किसी टाक्टर या बैद्य का सम्बन्ध हो जाने के पश्चात् फिर उनका चिकित्सा स और चिकित्सका से चलायना ही रहता है। यह बात बहुत प्रसिद्ध है। और इतनी मृत्यु हो गया है कि उसके कारण पर एक सिद्धान्त बन गया है कि जिसका भाग्य पसा देन है, वे सुख से खाने-पीने नहीं पाते। इस सिद्धान्त का अर्थ यही है। उनके खाने-पीने का भाग्य तो भाग्य राकने है और उनका भाग्य रोकता है। उनके खाने-पीने का मुख्य सम्बन्ध प्रकृत करनेवाली ये ओपथियाँ हैं जिनके मातृक त्रिषो द्वारा शरीर का एक राग बनता है और दूसरा पैदा होना है। प्रकृत वरनाम नाम करता रहता है।

ठीक इसके विरुद्ध निर्णयों और गरीबों में लोग देखते हैं कि वे अपनी चिकित्सा के कारण ओपथियों का सेवन नहीं कर पाते। फल यह होता है कि वे कुछ देर तक रोगी रहते हैं। किन्तु

अच्छे लोगों के घाद अरग्य लाभ करते हैं। यह नि-
 सत्य है कि गरुड़ लोग अमारो की भक्ति रागी नहीं रखते।
 इससे लिए कोई यह नहीं कह सकता कि अमीरा से और भक्त
 से अक्षयत होती है। इमतिग अमारो रोगी रहा करते हैं।
 गरीबा से भगवान प्रसन्न रहते हैं, इमतिग वे रागी कम
 करते हैं। मधी यान यह है कि औपधियों के प्रभाव से शरीर
 और भी रोगी होजाता है। ऐसी दशा में जो लोग मग्य आपास
 का ही मेवन करते रहते हैं, वे नारोग किस प्रकार
 सकते हैं।

औपधियो का विषय

चि विज्ञान के समय में सबसे महत्वपूर्ण बात जानने की थी
 है कि हमारे शरीर के भीतर कोई भी द्रव्य न जाना चाहिए
 सिवा इसके कि जो हमारे व्याप्य पदार्थ हैं। हमारे खाने के
 चीजों में भी सम्पूर्ण भाग शरीर के लिए आवश्यक नहीं होता
 किन्तु उसका पृथक करण हमारी शक्ति के बाहर है। इससे
 हम उनको खाने के काम में लाते हैं और उनके शरीर के भीतर
 पहुँचने पर शरीर उनसे आवश्यक तत्व लेलता है और शेष भाग
 का मल के रूप में बाहर कर देता है।

यह बात न केवल औपधियों के संबंध में है, बल्कि किसी
 भी पदार्थ के संबंध में है। सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तु भी हमारे शरीर के
 भीतर न जानी चाहिए। इसलिए कि शरीर के लिए वह न केवल
 अनानुश्यक है बल्कि घातक है। इसलिए यदि कोई इस प्रकार

की वस्तु पहुँच जाती है तो शरीर के अग्रयन उमरों तुरन्त निराकृत्य की चेष्टा करते हैं। यदि उसके निरक्षण का प्रयत्न प्रकृत प्रकार की रुकावट पड़ी तो उमरों से भी एक विष ही उत्पन्न होगा, जिस प्रकार दूधरे मलों से उत्पन्न होता है।

अभिप्राय यह कि भाज्य पदार्थों के सिवा जहाँ कुछ भी हमारे शरीर के भीतर जाता है, वह सब विनाशनीय द्रव्य अथवा फारेन मैटर कहलाता है। इस मिद्वान्त का वाद भा विरोध न कर सकेगा। ऐसी दशा में आपधियों की उपयागिताता यहाँ पर नष्ट हो जाती है और उनकी घातकता की कहाना आग चलने लगती है, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है।

यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रकार की अधिक बातों से इस विषय को अधिक लम्बा किया जाय। मनेपम यहाँ पर जायते प्रतीय गयी हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि आपधियों के प्रयोग से रोगों का निराकरण नहीं होता, बल्कि शरीर सदा-सर्वदा के लिए रोगी बन जाता है।

९-रोगों की स्वाभाविकता और वृत्ति।

पिद्वले पत्रों में यह बताया गया है कि रोग क्या हैं और वे क्या काम करते हैं। उसके आगे यहाँ पर हम यह बताया चाहते हैं कि रोग उपजाने पर उनकी स्वाभाविकता क्या होती है उनकी मँग क्या है और समाज में उनके लिए क्या उपचार किए जाते हैं।

चिकित्सा का यह उद्देश्य है कि शरीर-विज्ञान की जानकारी के साथ रोगी को स्वाभाविकता का समझने की चेष्टा करे और शरीर से विष निकालने के लिए उन प्रयत्नों को काम में लाए जिनसे शरीर के आरोग्य होने में सहायता मिले, साथ ही उस समय से रोगी को शान्ति मालूम हो।

इसके समय में समाज की जो अवस्था है उसको देखकर और समझकर यदि यह कहा जाय कि औपधिया के सकारण रोगों की स्वाभाविकता पर उलटा प्रभाव डाल रखा है तो अनुचित न होगा। इस बात को स्पष्ट रूप में समझने के लिए यहाँ पर एक नहीं, अनेक ऐसे उदाहरण दिये जायेंगे, जिनसे रोगी की स्वाभाविकता का पता चलेगा और यह मालूम होगा कि उनके संबंध में जो ऊपरी उपचार किये जाते हैं, वे कितने उलटे हैं जिनमें लाभ होने की बात तो पीछे है, रोगी को शान्ति के स्थान पर कितने बड़े कष्ट का अनुभव होता है।

इमें दुग्ध के साथ कहना पड़ता है कि अशिक्षा के कारण एक ही समाज यों ही अधकार में है, दूसरे लोगों और डाक्टरों ने लोगों को जो विचार भर रखे हैं, वे केवल कष्ट के प्रधान बाल हैं, इस प्रकार की परिस्थितियाँ यह कहने के लिए मजबूर करती हैं कि सर्वोत्तम आधुनिक-व्यापारियों ने लोगों को प्रशंसा की आरम्भ करने के लिए बजाय अन्वय की ओर रुचि का प्रयत्न किया है।

रोगों को भोजन

रोगों के सम्बन्ध में इस पुस्तक में जाना जाता है, कि इनसे यह साफ मालूम होता है, कि खाद्य पदार्थों से जो रोग उत्पन्न होते हैं, उनके संचित होने के कारण रोग उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार उनके प्रतिकार में भोजन का रोकना आवश्यक होता है। यदि पेट में ज्वर, जुकाम, अथवा इनमें सत्रा रहने वाले रोगों में इस बात की सहाई में कि-ने स्पष्ट कारण हैं तबिनसे कोई भी समझ सकता है। भोजन देना बंद कर देना चाहिए, इसक लिए प्रकृति को सहायता देकर इस प्रकार समझा जा सकता है कि बुखार, जुकाम आदि जैसे रोगों के आरम्भ होते ही रोगी का भूख नहीं लगती, यानी भोजन की इच्छा नहीं होती। भोजन की सभी चीजों के प्रति रोगी की अरुचि उत्पन्न हो जाती है। स्वादिष्ट-से-स्वादिष्ट पदार्थ भी प्रस्तादिष्ट मालूम होते हैं। यही स्वाभाविकता है। प्रकृति का प्रयत्न यही-सकते हैं। यही उसकी आज्ञा है और यही उसकी आवश्यकता है।

अब रागियों और रागियों का इलाज करने वालों का दृष्टिकोण है। रागी मगराज डाक्टर साहब के पास पहुँचे। देखते हैं डाक्टर साहब न रशाग किया वहिण क्या बात है ?

रागी ने कहा—डाक्टर साहब ध्यान दो—तीन रातें सुतार आता हूँ, मिर में नदें हूँ जागू मालूम होता है। रातें नींद नहीं आती।

डाक्टर साहब ने एक-एक बात पूछकर नुमता लिया और रागी का देखिया। रागी ने पूछा—डाक्टर साहब खाने के लिए

डाक्टर साहब—दूध और साबूदाना लगा।

रागी, शीशी में दवा लेकर चला आया। बुजार बंद, दुबला है, भूख नितानुल नहीं है। दाढ़िन से पाखाना नहीं हो रहा। श्लेकित साबूदाना तैयार किया। रागी ने डटकर खाया। डटकर क्यों न खाए, अरहर की दान और गेहूँ की मूगी राटिया से दूध में बना हुआ साबूदाना कहीं अच्छी चीज है। फिर पेट भर क्यों न खाया जाय। अच्छा लगे या न लगे। भूख हा या न हो। इन सब बातों का कोन देखता है। प्रकृति के नियमों का कितना भयकर उल्लंघन होता है। रागी साबूदाना खाता जाता है और कहता जाता है—साबूदाना खाने में अच्छा नहीं मालूम हो रहा।

कितनी सीधी सी बात है। रागी की अवस्था को देखकर भोजन बढ़ करना कितना आवश्यक था, परन्तु डाक्टर साहब का दूध और साबूदाना चल रहा है। यदि कहीं वैद्य जी से काम

गते दूध और सात्वता के ग्यान पर मुग की दान और
 की चर्चो है। इनका फल यह होता है कि प्रायः रागिया का
 हावाना है। इसलिए कि ग्याने की चार्जे मुग क नीचे उन
 निम्न प्राणाशय म पहुँचती हैं उनका लने क लिए आमाशय
 ग्याग री है। इसके फलस्वरूप क हाती है। भावन को राहन
 लिए प्रकृति की ओर मे यत्न रूसरा का प्रतिबध है।

गर्मी और उत्ताप की वृद्धि मे

बिन रोगारियों में शरीर गम हा जाता है और गर्मी तथा
 ताप की वृद्धि कभी-कभी इतना अधिक हा जाती है कि शरीर
 गम की तरह जलने लगता ह, इस रशा मे रोगी बहुत बेचेन
 ला है। उत्ताप की अधिकता म जामार की व्याकुलता उदती है
 और चर निमा प्रकार उसके शाति करने की धात सोचता है।

बहुत मामूली बात है कि इस प्रकार उदती हुई गर्मी और
 लन मे रोगार पानी पीने का माँगता है, उमको स्वच्छ और
 शीतल जल देने के र्यान पर गर्म प्य थोटा हुआ पानी दिया
 जाता है। लागता का यह भी निश्चाम है कि ज्वर मे अधिक पाना
 नो अच्छा नहीं होता। जहाँ तक प्रकृति का सन्ध है, वहाँ तक
 उ पान उलटी मालम होती है। गर्मी के उदने पर प्यास का लगना
 सामानिक है। और प्यास शीतल तथा स्वच्छ जल पाकर ही
 शात हाती है। जिमके लिए गरम जल या गरम दूध दिया जाता
 है। प्राकृतिक चिकित्सा के मत के अनुमार यह बात न केवल
 प्रहितकर है बल्कि बीमार के लिए व्याकुलता की वृद्धि करने

वाजी है। एसी दशा में प्रकृति जीतल जल का चाहती है।

बीमार के लिए शुद्ध वायु और प्रकाश

शुद्ध वायु और प्रकाश रोगों का शमन करता है विषय दमन करता है। रागातुओं का नाश करता है आर रोगों शान्ति देकर तारक बनाता है। लेकिन वत्तमान ओपधि निर्यात के पड़ित इसका आवश्यक नहीं समझत। रखा जाता है कि काइ बीमार कुछ अधिक रोगी हो जाता है ता उसका वायु प्रकाश से बचाकर रखा जाता है। बैग लागत। बराबर इस रोगी को कहा ही करते हैं कि हवा न लगने पावे। उनकी इस आशा के अनुकूल बीमार को रखने की चेष्टा की जाती है।

इन भ्रान्तियों का यह फल होता है कि बीमार घड़ घर के उस भाग में रखा जाता है, जहाँ वायु नहीं पहुँचती। प्रकाश भी बहुत कम होता है। इस पर भी वायु और प्रकाश क आने के माग में माटे-माटे कपड़ों के ऐसे सर्गीन पर्द डाले जात हैं, जिससे रोगी के लेटने का स्थान वायु और प्रकाश से बिलकुल अलग होजाता है।

इस दशा में बीमार की तबीयत घबराती है। वायुहीन स्थान गर्म हो उठता है। एक ओर बुखार की वह गर्मी, जलता हुआ शरीर, दूसरे यह घड़ स्थान। बीमार अपने कष्ट को स्वय ही जानता है। इसपर भी एक ओर बुद्धिमानी से काम लिया जाता

है और वह यह कि मांटी-माटी रखाइयाँ उठाकर मरोज के प्राण सकट में डाल दिये जाते हैं।

ये सभी उपचार प्रकृति के विरुद्ध हैं। शुद्ध वायु मिलने से रोगी को बहुत शान्ति मिलती है। जलते हुए अग में ताप वायु का स्पर्श होने से उत्ताप क्षीण होता है। लेकिन जिन लोगों की बुद्धिमानी से ये व्यवस्थायें की जाती हैं, उनका विज्ञान समझ में नहीं आता।

भला इसके क्या अर्थ कि रोगी जिस समय ज्वर की आग में भुन रहा है, गर्मी के मारे गला सूखा जाता है जलन इतना अधिक है कि रह-रहकर प्राण ऊरत है शरीर पर पतला ज्वर भी सहन नहीं होता, किन्तु उपका सहन करी वाला मांटी रखाइयों से उसको ठरुने की चेष्टा करत हैं। कितना भयकर समय होता है। शरीर में पड़ती हुई आग भीषण तृपा। इ कष्टों का नाश करी वाले उपचारों का अभाव। न पीने व शीतल जल, न शुद्ध वायु का स्पर्श, न आरोग्य देने वाला प्रवाश वास्तव में बीमार के आरोग्य करने का नहीं, मारने का सामान्य कठुा मिया जाता है।

यहाँ पर समझ लेना चाहिए कि शरीर के भीतर जा वि पैदा हो गया है, वह विष उत्ताप के रूप में प्रकट होता है। प्रकृति इस विष का त्वचा के मार्ग से निरालने की चेष्टा करती है परन्तु दुर्गम्य से ओपशियों के निधाता उत्ताप के रूप में विष का निरालने नहीं देना चाहते। इस समय की स्थिति का जय स्मरण

आता है तो रोंगें गड़े हो जाते हैं और घोमार की दशा पर आता है। वास्तव में चाहे यह कि रोगी को व्याम में शुद्ध शीतल जन दिया जाय। प्रकाश और शुद्धवायु मिलने के विगेर रूप में व्यक्त्या की जाय। यदि एमा किया जाय तड़पना हुआ रोगी तीस मिनट के मोतर शान्ति अनुभव करे उसके चेहरे पर विश्राम के भाव दिखाई देंगे। बीमार को ना होगा, जैसे उसका रोग घटकर आधा रह गया।

सिर की पीड़ा के समय

अन्य अपचारों की भाँति सिर की पीडा के लिए भी इसी प्रकार का उपचार किया जाता है। यदि किसी के सिर पीडा पैदा हो गयी है, जिससे दुखी होकर पीडाग्रस्त व्यक्ती किसी वैद्य या डाक्टर के पास जाता है और दवा लेकर कि की पीडा अन्त्रा करना चाहता है। डाक्टर और वैद्य भी ऐसी दवाओं का प्रयव करते हैं, जिनसे पीडा शांत हो जाय।

इसके लिए सिर में मलने के लिए तेल दिये जाने हैं और इस बात की आशा की जाती है कि सिर की पीडा जाती रहेगी। डाक्टरों के पास इसके लिए एक अमेजी प्रिक्रिया होती है, जिससे खालने के पश्चात् कुछ देर में पीडा जाती रहती है।

यह सब बातें हाती हैं। परन्तु इनका परिणाम क्या होता है। इसके भी समझने की आवश्यकता है। हम यह नहीं कहते कि इन उपचारों से सिर की पीडा का नाश नहीं होता। नाश होता

किन्तु कुछ समय के लिए। उसका कारण यह है कि मित्र की पाड़ा ता शरीर के भीतर उत्पन्न हुए त्रिप का सञ्चालन होती है। अस्तन-पीडा स्वयं वाइ पृथक राग के रूप में है। मत्स्य यह है। इसका लिए मात्र आपत्तियां के प्रभाव से उपवास की प्रेरणा की जाती है। उसके बाद प्रभाव होता है। परन्तु यह कि अस्तन पीडा कुछ समय के लिए शांत हो जायगा और उसके बाद फिर पैदा हो जायगा। और दूसरे यह कि यदि आपत्तियां ने उसका अतिकूल ही प्रभाव दिया तो शरीर के भीतर उपस्थित त्रिप निम्न दूसरे राग के उत्पन्न हो जाना का कारण होगा और शरीर की रक्षा पहले की अपेक्षा आवश्यक भयानक हो जायगा।

इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त है कि किसी भी रोग का दवाया न जाय। शरीर में उसके अस्तित्व का नाश किया जाय। इसके सिवा शरीर का वास्तव में आराम बनाने के लिए दूसरा कोई भी साधन नहीं हो सकता।

१०-प्राकृतिक चिकित्सा का मूल मतभेद

वर्तमान चिकित्सा व्यवसायियों के साथ, प्राकृतिक चिकित्सा का मतभेद है। यह मतभेद बहुत गहरा है और चिकित्सा की जड़ से लेकर, रोग के मूल से लेकर, अतः तरु—सिद्धान्त और कार्य तरु में परस्पर मतभेद है, जमा कि हमने इसके पठल स्थान-स्थान पर स्पष्ट करने की कोशिश की है।

समाज में जो चिकित्सायें फैली हुई हैं, वे बहुत समय से चली आरही हैं यद्यपि उनमें अंगरेजी ओपधि-विज्ञान में अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए हैं और अमेजी ओपधियों ने अपने ही मार्ग में, अपने ही सिद्धान्त पर एक गभीर उन्नति की है, किन्तु वैद्यक और हकीमी ने पूर्ण अशो में प्राचीनता के रोग का ही समर्थन किया है। अतः यह अवश्य हुआ है कि समय जितना ही आगे बढ़ता गया, प्राचीन बातों के महत्त्व और मार्ग भी उतने ही गिरते गये।

जहाँ अंगरेजी डाक्टरों ने नित नई खोज करने और अपने चिकित्सा में एक नवीन लहर उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है वहाँ हमारे वयो और हकीमों ने अपने पूर्वजों की कीर्ति का आरंभ लेना ही पर्याप्त समझा है। आयुर्वेद चिकित्सा का नवीन रूप से कुछ खोज नहीं हुआ इस प्रकार की बातों का फल यह होता है कि जो अनुसन्धान हुए थे, वे आज मरुत्वा वशा के बाद कुछ

अशा में अनुपयोगी हा गये और दूसरा यह प्रभाव भी पा कि इनके अधिक समय के बाद उन अनुसन्धानों का स्व रूप नष्ट हा गये।

यह तो हुआ, उनके सिद्धान्तों, अनुसन्धानों और उद्देश्यों का रूप, परन्तु उनके कार्य प्राकृतिक व्यवस्था से बहुत भिन्न हैं। समाज के वैज्ञानिकों ने सत्य की खोज में सफलता पाई है। विद्वानों ने प्रकृति का अध्ययन किया है और वे इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि रोगों में यदि प्रकृति का अनुसरण न किया जायगा तो चिकित्सा में सफलता न मिलेगी। इसी नई खोज के परिणाम स्वरूप प्राकृतिक चिकित्सा का जन्म हुआ है।

रोगों की सख्या

वैद्यक, यूनानी और डाक्टरी मत के अनुसार रोगों को एक अपरिमित सख्या है। दस, चार, दस, बीस सौ, दो सौ आदि किसी सख्या में रोगों के नाम, उनके कारण और सिद्धान्त नहीं बताये जा सकते। यदि स्वप्न बातों का छोड़ दिया जाय तो इस के समय में, वैद्यक, यूनानी और डाक्टरी में अधिक मत भेद नहीं है।

इन में मत भेद न होने का कारण है और कारण यह है कि एक, दूसरे का आधार लेकर आविर्भाव हुआ है। यों आगे चलकर उनमें भी एक प्रकार के कुछ अंतर पाये जाते हैं, किन्तु स्वाभाविक रूप से उद्देश्य और विषय में, कार्य और सिद्धान्त में वे एक ही हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा का मूल और सिद्धान्त उन सब से भिन्न है, इस अनुकूलता और प्रतिकूलता को लेकर यहाँ अधिक आलोचना करने का कोई उद्देश्य नहीं है। केवल रोगों की सख्या और उनके मूल पर विचार करना है। हमारी वर्तमान चिकित्साओं का जहाँ यह मत है कि रोगों की कोई सख्या नहीं है वहाँ प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त से एक ही रोग है। अथवा यों कहें कि समस्त रोगों की जड़ एक ही है। जितने भी रोग उत्पन्न होते हैं, वे कुछ निश्चित कारणों के साथ आगे बढ़ते हैं। प्राकृतिक चिकित्साशास्त्र के विद्वानों का कदना है कि प्रायः सभी रोगों में प्रतिकार के जिन साधनों को काम में लाया जाता है, उनमें परस्पर किसी प्रकार की विषमता नहीं है।

समस्त रोगों की उत्पत्ति

जब रोगों की जड़ एक ही है अथवा सभी रोगों का एक ही रोग है तो जितने भी रोग उत्पन्न होते हैं, उनकी उत्पत्ति भी एक ही स्थान से और एक ही कारण से होनी चाहिए।

इस सिद्धान्त के अनुसार नाच की पत्तियों में रोगों की उत्पत्ति पर विचार करना है। यद्यपि इस प्रश्न को लेकर पहले भी लिखा जा चुका है और उन्हीं बातों को लेकर प्रसंगवश यह भी स्पष्टीकरण किया जायगा। पूर्व कथनानुसार शरीर के भीत मल के संचित होने पर विष की उत्पत्ति होती है। यह विष और कुछ नहीं है, हमारे ग्राह्य पदार्थों से निकले हुए मल का ही रूप है जो समय और संयोग पाकर विष का रूप धारण करता है।

इसमें सन्देह का स्थान नहीं है। इसे अनेक प्रकार से सम्भल जा सकता है। हम पीतल के बर्तन में भोजन दिया करते हैं। भोजन करने के काम में भी प्रायः पीतल के बर्तन आते हैं। हम जिस थाली में भोजन करते हैं, रूचि पूर्वक खाना खाते हैं, बिना किसी पदार्थ यदि उस थाली में रात भर पड़े रहते हैं तो दूसरे दिन उनका रूप बदल जाता है और उन पदार्थों की प्रकृति में परिवर्तन हो जाता है। दूसरे दिन उनमें कपिला भाव उत्पन्न होता है। अब इन चीजों में सुरक्षि नहीं रह जाती। उनको यदि चिह्न पर रखा जाय तो त्रिप का कडुआपन महसूस होता है। निश्चय ही अब ये चीजों के योग्य नहीं रह जाती। और यदि उनको खाने के काम में लाया जाय तो न केवल ये चीजें अरुचि उत्पन्न करेंगी बल्कि हमारे शरीर के लिए घातक सिद्ध होगी।

इसी प्रकार मनुष्य के पेट के भीतर आमाशय में भोज्य पदार्थों से उन तत्वों के निकालने का काम होता है जो मनुष्य को जीवित रखने का काम करते हैं और शरीर में प्राण रसिक उत्पन्न करते हैं। शेष अशुभ मल रह जाता है जो मल द्वार से शरीर से बाहर हो जाता है। यही दशा अथवा पदार्थों की भी होती है।

रोग उत्पन्न करने या तो विशेष प्रकार का मल है। इनके सिवा दूसरे कारण में भी शरीर में मल एकत्रित होता है और जितना भी मल एकत्रित होता है, उतना ही शरीर में निकालने का कार्य शरीर के भीतर छान्टे-बंद अवस्था बाधकर किया करते हैं।

भस यहाँ पर गमक लेना चाहिए कि इन मत्रों के निवा और कोई कारण रागों की उत्पत्ति का नहीं होता। मोटे-मोटे तीन ही भाग हैं, जिनका कि वजन दो चुम्मा है और वही इस प्रकार है—

(१) गन्ध पदार्थों के द्वारा उत्पन्न दुश्चा मल ।

(२) पेश पदार्थों के द्वारा उत्पन्न दुश्चा मल ।

(३) नाक तथा शरीर के अन्यान्य भागों से प्रविष्ट करने वाली वायु से उत्पन्न दुश्चा विमार-भाग ।

(४) शरीर के भीतर अपरिमित सत्या में काम करने वाले तत्वा क नष्ट होने पर उत्पन्न दुश्चा विमार ।

इस प्रकार उपरोक्त कारणों से शरीर में मल अथवा विकृत अश तैयार होता है जो अपने आप शरीर से निकलता रहता है। मितने ही कारणों से यह मल मली प्रकार निकल नहीं, पाता उस दरार में रुका हुआ मल संचित होने लगता है। उसी के द्वारा राग उत्पन्न होते हैं। जो रोग पैदा होते हैं, उनको डाक्टर और वैद्य दवाने की चेष्टा करते हैं और प्राकृतिक चिकित्सा में उनको शरीर से निकालने का प्रयत्न किया जाता है।

मल के संचित होने का कारण

यदि तो स्पष्ट ही हो चुका कि समस्त रोग मल की रूपाय से उत्पन्न होते हैं। किंतु यहाँ पर एक शका उत्पन्न होती है कि जब हमारे शरीर के भीतर मल को निरन्तर निकालने की व्यवस्था है तो फिर मल में रुकावट होने का और संचित होकर विष देने का कारण क्या है ?

यह प्रश्न ठीक है और उसका समाधान उपेक्षापूर्ण के लिए आवश्यक है। इसमें नष्ट नहीं कि शरीर मल और विषाक्त के निकालने का कार्य निरन्तर रूप में किया जाता है। और यदि हमारा जीवन स्वाभाविक आहार-विहार में रह सके तो बहुत कम ऐसे कारण उत्पन्न होंगे, जिनमें मल की रचना में सहायता मिले। किन्तु सच बात तो यह है कि मनुष्य के जीवन की स्वाभाविकता अप्रकृत रूप में मिट गयी है। यही कारण है कि मनुष्य का शरीर बीमार रहने के स्थान पर गंगा अधिभूत रहता है। शरीर की वास्तविकता यह है कि प्राकृतिक जीवन चक्र पर भी शरीर में विचार और मल उत्पन्न होते हैं और उस दशा में भी शरीर को विकारों से शुद्ध करने की आवश्यकता पड़ती है। फिर अप्राकृतिक जीवन चक्र पर।

अब हमें मल के संचित करने वाले कारणों पर भी विचार कर लेना चाहिए। उनमें यह स्पष्ट हो जायगा कि हमारा जीवन मनुष्य की व्यवस्था का किस प्रकार भंग करता है। मल की रुकावट के निम्नलिखित कारण होते हैं—

(१) एक बार का खाया हुआ भोजन ठीक-ठीक न पचने पर दूसरी बार फिर खालेना।

(२) आमाशय में पाचन क्रिया का कार्य करने वाले अंगों के ऊपर उनकी शक्ति, से अधिक कार्य का बोझ डालना।

(३) रुग्णवस्था में पाचन क्रिया के मद हो जाने अथवा बढ़ हो जाने पर भी भोजन करना।

(४) मल-विसर्जन का कार्य ठीक-ठीक न होने पर भी भावन करते रहना और मल का परिमाण बढ़ाते रहना ।

(५) जो वायु हगार फेफड़ों में पहुँचती है उसका ठीक-ठीक न निकलना और फेफड़ा के रिक्त स्थानों में शुद्ध वायु का मिलना ।

यदि सच पूछा जाय तो मनुष्य का जीवन जानवरों और जानवरों से भी बहुत गिरा हुआ है । उनके जीवन में स्वभाविकता है । परन्तु मनुष्य ने अपने जीवन की स्वाभाविकता का नाश कर लिया है । जो पदार्थ मनुष्य के खाने के नहीं हैं उनके खाने में यही परिणाम होगा कि मनुष्य का आमाशय उस पचाने का कार्य ठीक ठीक न कर सकगा । किन्तु मनुष्य के खाने का कार्य बराबर जारी रहेगा । हम लोगों का जीवन ऐसा व्यस्त हो गया है कि उमरों देगन्तर आरच्य करना पड़ता है जब कभी काम-काज में खाने पीने की व्यवस्था होती है तो वे चीजें खाने को मिलती हैं जो सहज ही अपान्य होती हैं और उसपर भी इतना धूम-धूसकरगालिया जाता है कि भोजन स्थल से उठकर घर पहुँचना कठिन हो जाता है । इसका परिणाम कैसे अच्छा हो सकता है ।

जो मनुष्य अधिक-से-अधिक एक मन धोम लेकर चल सकता है, उचित तो यह है कि उसके सिर पर एक मन से कहीं धोम रखा जाय । किन्तु यदि उसके सिर पर, डेढ़ मन से दो मन का धोम रख दिया जायगा तो उसका फल क्या होगा

हो न कि वह मनुष्य कुछ दूर चलेगा और फिर थककर गिर
 । गायगा। ठीक यही रूशा हमारे शरीर के उन अंगों की है जो
 आमाशय में पाचन-क्रिया का कार्य करते हैं। प्रकृति ने पचाने
 वाले अंगों की शक्ति के अनुसार भोजन करने की एक तोल
 नाप प्रत्येक मनुष्य के साथ दे दी है। आरु, प्रकृति की यह
 कफलता कितने कमाल की है। खानेवाला उतना अधिक न
 खाना, जितना अधिक उसके आमाशय में पचाने का कार्य
 कर सके, इसके लिए उसने एक तोल-नाप दे रखी है। यह तोल-
 नाप इस रूप में है कि प्रत्येक मनुष्य अथवा खानेवाला इच्छा
 के अनुसार उतना ही खाना खाता है, जितना खाना उसका
 आमाशय सरलतापूर्वक पचा सकता है। किन्तु जब उससे
 अधिक होने लगता है तो खाने वाले को अपने आप अनिच्छा
 महसूस होती है। किन्तु दो ही कारणों से वह अधिक भोजन
 खाता है। या तो अल्पे भोजन के प्रलोभन में अथवा किसी के
 अधिक आप्रह करने पर। इसका फल कभी अनिच्छा नहीं
 हो सकता।

रोगों का प्रतिकार

अन्याय बातों के साथ-साथ, रोगों के प्रतिकार में भी प्राकृ-
 तिक चिकित्सा का अन्य चिकित्साओं के साथ मत भेद है। जैसा
 कि पिछले पन्नों में लिखा गया है, श्रौषधियाँ प्रत्येक रोग में, रोग
 को दूर करने का कार्य करती हैं। प्राकृतिक चिकित्सा इसके विरुद्ध
 है। यह अपने सिद्धान्त के अनुसार रोग उपशान्त करने वाला

कारणों के—मल के पिर के निकालने का काम करती है। मल के दवाने पर इस चिकित्सा का विश्वास नहीं है। हमारा काम केवल यह कि जो प्रकृति, रोग उठने ही उसके प्रतिकार का व्यवहार करने लगती है, उसकी सहायता की जाय।

प्रकृति के घनाये हुए मार्ग के अनिरीकृत रोग निवारण का कोई दूसरा मार्ग नहीं हो सकता। जब यह सत्य है तो फिर प्रकृति के मार्ग का क्यों नन्द किया जाय। जैसे हमारा एक स्वामी है वह जो कुद्र करता है, उसने यदि हमारी सहायता होती है तो स्वामी का काय सरल हो जाता है और यदि उसके विरुद्ध कुछ किया जाता है तो वही काय कठिन हो जाता है। प्रकृति के कार्यों में भी यही बात है। चिकित्सा का केवल यही उद्देश्य होना चाहिए।

यह तो सत्य है कि प्रकृति हमारे शरीर से रागों के निवारण का कार्य करता है। अब किसी भा शास्त्र और विज्ञान का यह काय है, कि ऐसे नियम, उपनियम और व्यवस्थाओं का आविर्भाव कर, जिनसे राग-निवारण में प्रकृति को सहायता मिले। ऐसा करने से जिम शास्त्र अथवा विज्ञान की रचना होगी, उसी का नाम चिकित्सा शास्त्र अथवा चिकित्सा-विज्ञान होगा। सारा यह कि चिकित्सा का यह काय होना चाहिए। यदि इसके विरुद्ध समान की कोई चिकित्सा नाम करती है तो उससे कल्याण की आशा कम है।

प्राकृतिक चिकित्सा का एक मात्र उद्देश्य यही है कि वह रोग-निवारण में प्राकृतिक कार्यों की सहायता करे और ऐसे

राधनो के द्वारा करे जिनमे रोगी को उम्मी समय से शान्ति
प्राप्त हो सके ।

इस प्रकार प्रोपिजि जाली चिन्नि मात्रा के मात्र प्राकृतिक
चिन्नि का अत्रा उपवास के प्रयोग का अनेक प्रकार मत-
द दे । यह मतभेद उत्ततर प्रटना जाता है और समाज मे ऐसे
प्रामिया की वृद्धि होती जाती है जो राग निवारण करने मे
प्राकृतिक जाला को अधिक् महत्व देते हैं ।

११--रोग और उपवास के प्रयोग

कि मा भी राग का कर करने के लिए जिन्म काय म न
 ास क प्रयोग किये जात है वह एक प्रकार का प्रा
 तिक चिकित्सा है। यद्यपि प्राकृतिक चिकित्सा मे श्वर भा कई
 एक साधना का प्रयोग किया जाता है। जम धूप क प्रया
 जल क प्रयाग और मिट्टी क प्रयाग। इन प्रयाग के द्वारा ज
 चिकित्सा नी जानी है, वह प्राकृतिक चिकित्सा कहलाना है।
 उपवास क प्रयाग, जल के प्रयाग, मिट्टी क प्रयाग आदि आदि
 राग-निवारण क नितने साधन हैं, वे सब एक, दूसर क साथ
 इस प्रकार एक सूत्र मे बधे हुए हैं कि जहाँ एक का आवश्यकता
 हाती है वहाँ दूसरा अशक्य आनाता है। इसलिए हम यदि
 उपवास क प्रयाग के स्थान पर, इन पत्रा मे प्राकृतिक चिकित्सा
 शब्द का व्यवहार करे तो उपवास के प्रयोग से वह भिन्न न
 समझा जायगा।

पिछले पत्रों को पढ़कर यह समझा जासकता है कि राग
 क्या हैं, ओषधि वाली चिकित्साये क्या काम करती हैं एव
 उपवास के प्रयाग अथवा प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त क्या
 है। इन प्रश्नों को लेकर भली प्रकार पिछले पत्रों मे लिखा
 जाचुका है। उससे आगे क्या जानना चाहिए, इस पर कुछ यहाँ
 लिखा जायगा।

उपवास के प्रयोगों का आश्चर्यजनक प्रभाव

इन प्रयोगों का सबसे बड़ा महत्व यह है कि छटे-नववाँ शताब्दी के लोगों से लेकर, उडे-से-उडे रोगों तक उपवास के प्रयोग अत्यन्त लाभ पहुँचाते हैं। मायामय व्यायाम के शरीर अनजाने ही तबोयन भारी गायु जाती है कुछ अन्त नग लगता किसी प्रकार समय नहीं बटता इस रोगों में यदि उपवास के प्रयोग काम में लाये जायें तब, उमारा तब नित न अनुभव है कि उमी समय में एक प्रकार का शांत मिलता है। चित्त का भार धन हलका गायु होता है। यह अवस्था सिन्धी औषधियों द्वारा कदापि सम्भव नहीं।

उपवास के प्रयोग क्या होते हैं, इनमें क्या किया जाता है आदि बातों का उर्णन कुछ आगे चलकर क्रमशः किया जायगा। हमारे पहले उनपर कुछ लिखना अप्रामाणिक होता, इसीलिए उनपर कुछ लिखा नहीं गया। किन्तु उपवास के प्रयोगों में यद्यपि समझ लेना चाहिए कि गाना छोड़ देना और उपवास करने लगना ही उपवास के प्रयोग हैं। ऐसा अनुमान लगा लेने से उपवास के प्रयोगों के समझने में उड़ी भूत होगी। उपवास के द्वारा चिकित्सा के एक विज्ञान काम में लाया जाता है, उमी व नाम है, उपवास के प्रयोग अथवा उपवास चिकित्सा। इसमें केवल उपवास करने से ही काम नहीं चल जाता, किन्तु उसके साथ-साथ कई प्रकार की क्रियाएँ की जाती हैं। उन सब से मिलकर उपवास के प्रयोग अथवा उपवास चिकित्सा, का कार्य पूरा होता है।

जो लोग इन प्रयोगों का ज्ञान रखते हैं और उनका प्रयोग करते हैं, वे बहुत कम रोगी होते हैं। किन्तु यदि उनके शरीर किसी प्रकार राग की सम्भावना होती है, तो वे वहीं स सम्पूर्ण समूल नाश करते हैं। हमारे समाज में इन प्रयोगों की यह अज्ञान सफलता है। और जिनके लाभों से वही परिचित हैं जो निम्नलिखित पृथक उनको काम में लाते हैं।

असाध्य रोग और उपवास

उपवास के प्रयोगों का सध के तिलक्षण प्रभाव और महत्त्व यह है कि जो राग पुराने हो जाते हैं और असाध्य माने जाते हैं अर्थात् जिनके अच्छे होने की सम्भावना नहीं रह जाती उन रोगों में उपवास के प्रयोगों को तिलक्षण रूप में सफलता मिलती है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पुराने और असाध्य रोगों में औषधियों का महत्त्व बिल्कुल असफल सिद्ध हुआ है। कुछ ऐसे रोग पाये जाते हैं जो समाज में बहुत चुरी तरह फैले हुए हैं और जिनके कारण समाज का जन-समुदाय जजरित हो चुका है, उन रोगों में औषधियाँ काम नहीं करतीं। इस प्रकार के रोगों में प्रदर, दमा, काली खाँसी आदि जैसे रोगों की ता भरमार है और जिनके सम्बन्ध में औषधियों के चिकित्सक पूर्ण रूप से निराश पा जाते हैं। इनमें प्राकृतिक चिकित्सा अथवा उपवास के प्रयोगों का ज्ञान का-सा असर होता है।

कुट्ट अपने रोग हाते हैं जो साधारण विमारा से उपन्न होते हैं। किंतु आगे चलकर अत्यन्त भयानक हो जाते हैं और फिर नका अन्त्राहना कठिन ही नहीं असम्भव-मा हो जाता है। ऐसे रोगों में आमशय क रोग पुगान जुगार मत्रिपात वात रोग जीर्णज्वर आदि हैं। इन रोगों की शोषधियों द्वारा कदाचिन् ही कहीं प्र-द्व हुए हा। शता यह हे क दुर्भाग्य से जा लोग इन रोगों मे फस जाते हैं व शक्ति भर शोषधियों मे रूपया फूठते हैं आर दिन पर-दिन शरीर को जीर्ण नात जाते हैं। फल यह होता है कि जत तक जायित रहते हैं, अपने असाध्य रोग के कारण निराश एव आनन्दहीन जीवन धताते हैं और अत में मरकर चले जाते हैं।

यहाँ पर ऐसे रोगियों के कुट्ट उदाहरण देना अनुचन न होगा। उनकी घटनाये उपवास के महत्व की वृद्धि करती हैं आर नैर्नल।नचारों के मनुष्या मे विश्वास की स्थापना करती हैं। साथ ही उपवास के मार्ग में जो लोग नय नवीन रूप मे आकर इत हैं, उनके मार्ग को साफ करता है।

खाँसी का पुराना रोगी

बनारस मे प० दीनदयालु एक हमारे परिचित मित्र रहा करते थे। उनकी एक लडकी जिसकी अवस्था पन्द्रह वर्ष की थी, खाँसी से बीमार थी। इस रोग में उसको लगभग तीन वर्ष पीत चुके थे। पंडित जी एक अमेजी हाई स्कूल में, अमेजी-अध्यापक थे।

लडकी की गर्मी में पड़ित जी ने अनेक प्रकार की
 दवाएँ कीं। परन्तु प्र हाफ्टरी इलाज करते रहे, परन्तु उस
 कुछ लाभ न हुआ तो उनसे लोगों ने कहा कि वैद्यक
 कायना पागा।

पड़ित डॉनदयालु ने एक आयुर्वेदशास्त्र वैद्य की शरण पड़ा
 छ मास में अधिक तरु वे ठाकी दवा करते रहे। वैद्य जी
 कहना यह था कि रोग पुराना होगया है। कुछ प्रसे तरु
 करती पड़ेगी। वैद्य जी प्रतिद्ध आदमी थे। उनरु सब
 सदेह करने की गुञ्जाइश न थी। आशा में ही दो मास
 बीत गये। इसने बाद प डॉनदयालु को भेंट एक सायु से हुई
 उमने भी कुछ दवायें बतार्थी। उमरा भी वे इलाज करते रहे
 परन्तु कुछ विशेष लाभ न हुआ।

इस बीच में अपथियों के प्रयोग से होता यह था कि
 का जोर कभी-कभी कम होजाता था। परन्तु पूर्ण रूप स
 अच्छी न हाती थी। कुछ दिनों में निराश होकर पड़ित जी
 उसकी भी दवा वन्द कर दी।

दवा वन्द करने के बाद खॉसी और भी जोर पकडने लगी
 खॉसी का रोग आरभ होने के पहले लडकी काकी तन्दुरस्ती
 लेकिन इस रोग ने उमकी तन्दुरस्ती का नाश कर दिया।
 बहुत सूख गयी थी। कुछ दिनों के बाद पड़ित जी ने किसी
 परामर्श में प्राकृतिक चिकित्सा का आश्रय लिया और लडकी
 को नियमानुसार उपनास के प्रयोग कराये। पहला ही प्रयोग सा

दिना का हुआ। उस रात में 'गॉसी' बहुत कम हागयी। उसके बाद एक माम तक लडकी की नशा मामूला रही। पड़िन जी ने दूसरी रात फिर उपवास के प्रयोग कराया। इस रात 'ग्यारह' दिना का उपवास कराया। उन दिना में 'गमरी गॉसी' त्रिकुल शान्त होगयी थी 'ग्यारह' दिना के बाद जब उपवास भग किया ता उसकी रॉमी त्रिकुल अ-ठी हागयी थी। परन्तु उसके बाद भी उसका लगभग टेड माम तक दिना छने हुए गेँ की रोटी अगूर के पत्तो के साथ देत रहे। इसके बाद वह लडकी त्रिकुल अच्छी हागयी और फिर उसका कभी रॉमी का राग नहीं हुआ।

श्वास का रोगी

मुशी लालविहारी एक मिडिल स्कूल के हेड मास्टर हैं। मुशी जी की अवस्था जिस समय लगभग चालीस वर्ष के थी, उस समय से उनको श्वास की बीमारी होगयी। इसके पहले उनको रॉमो आरभ हुई थी। बहुत दिनों तक गॉसी अच्छी न हुई और मुशी जी ने भी उसकी विशेष चिन्ता न की। फल यह हुआ कि उनको श्वास का रोग हो गया। इस पर उनका कुछ चिन्ता हुई और वे श्वास-उपर की न्याये करने लगे।

मुशी जी बड़े कजूम आदमी थे। इसलिए वे कुछ खर्च न करना चाहते थे, परन्तु अच्छे होना चाहते थे। कोई फल न हुआ। श्वास का रोग धीरे-धीरे बढ़ने लगा। उनका शरीर दिन-पर-दिन घुलता जाता था। मुशी जी की स्त्री पढी लिखी और समन्तार

गों, उन्हा। इमके मन्पन्य मे हापरवाती अन्धा नही मन्
 इमनिग दय के निग मोशिरा की। कुत्र दिनों तक हा
 साहा की दया लावा रहीं। उनके बाद एक होमिगर्मिष द
 की विरिमा शुरू हुई। इसमे कुत्र राग शान्त हुआ। कर
 तक दया करने के पारण मुशी जी का बहुत नुस्खानु
 ससके बाद दया बद - र दा। इसके उपरान्त कुछ हा दिन
 उनका रोग बहुत घट गया, जिमके कारण मुशी जी का
 बहुत रासप्र हाने लगी।

मुशी साजबडादुर बैगों पर विश्वास न करत थे। म
 फिर डाक्टरी दशयें आरभ हुई। अन्ते न अन्ते दशयों
 दशयों की गया परन्तु राग अन्दा न हुआ। जितन दिन
 चलती थी, उतने दिन कुत्र शान्त था रहता थी आर द
 दिन को दया अन्त कर। पर यह फिर ज्या ही या हा वा
 इसी दशा में उनके कई नर्प अत गये। मुशी जी का बहुत द
 लगा। अत में उनके एक मित्र ने उनके अन्धे हा जाने का
 यास दिलाय। मित्र महोदय पानी ना इलाज करते थे और
 आस चिन्तित्ता के बड़े पक्ष गती थे।

मुगी जी के उपर इम बात का बड़ा प्रभाप्र पडा कि उप
 के प्रयागा में उनका कुत्र र्च न होगा। इमीलिए इसके
 वे अपने अन्धे होने पर विरवास भी करने लगे। मुशी जी
 मित्र ने मुशी जी को सा न रोज का उपवास कराया। उसके
 म्क सप्ताह रोककर फिर पद्रह दिन का उपवास कराया।

नों में उपवास चिकित्सा के सभी प्रयोग विधे गये। उपवास के
 ना में जाणीमा दिया गया, उससे उनके शरीर ने बहुत दान
 ना प्रकृतिक रक्षा और गूना हुआ मल गिरा। हमरी चार के
 उपवास के प्रयोग से मुशी जी का स्वयं अपना शरीर बहुत
 लसा मारुम हुआ। जब दूसरी चार का उपवास व भग करने
 र आपे उन दिनों में उनके मुँह में फिर। जान रुक का परि-
 नाण बहुत कम होगया था। श्वास ना टटा हुआ रोग बहुत
 शीण गगया था। कभी कभी मामूली खासी आजाती थी।
 उपवास ताडकर वे दा महीने तक अत्यन्त प्राकृतिक भोजन
 करत रह। हम रीच में उनका कोई मष्ट नहीं हुआ। मुशी जी
 के मित्र वहाँ से चले गये थे, तन्तु दो महीने के बाद वे फिर
 आपे और उन्होंने आफर फिर सात दिनों का उपवास कराया।
 इस चार उन्होंने और भा कई एक प्रयोग किये। फल यह हुआ
 कि मुगी लालनगदुर का श्वास रोग बिलकुल प्रच्छा हागया
 और उसके बाद उनका शरीर फिर पहने की भाँति तन्दुरुस्त
 होगया।

भेदे की कमजोरी

सात-आठ वर्ष का एक लडका था। लडके के माता-पिता
 श्रमोर आत्मी थे। माता पिता ता रोगी न थे, परन्तु लडका
 अपने छटिपन से ही रोगी था। उसका शरीर बहुत निर्बल था,
 और उसे एक-न-एक रोग बना ही रहता था जिसके कारण उसकी
 दवा होती ही रहती थी।

लड़के की बराबर बीमारी का कारण यह था कि उसका नाना बहुत कमजोर था, जो कुछ खाना खाता था, उसको हضم न होता था। इसके कारण उसको कोई न-कोई रोग हाता ही रहता था। रोगी रहने के कारण लड़के का शरीर बहुत दुबला पतला था।

पिता अपने लड़के को तन्दुरुस्त देवना चाहता था। इसके लिए अच्छे-से-अच्छे वैद्यों के द्वारा लड़के के लिए पुष्पिकारक औषधें दिलायी जाती थीं और खाने-पीने में सदा रक्त देने वाला चीजों के देने का प्रबन्ध रखा जाता था। परन्तु इन बातों से कोई लाभ न होता था बल्कि रोगों की समस्या बड़ती जाती थी।

किसी समय अपने उस रोगी लड़के को लिए हुए पिता रेल गाड़ी में जा रहे थे। गाड़ी में ही किसी प्राकृतिक चिकित्सक से उनकी भेंट हुई। उसकी बातें मालूम होने पर आपने अपने लड़के को दिखाया और कई-एक बातें पूछीं। लड़के के पिता को इस बात से बहुत सतोष मिला कि लड़का सदा के लिए नारोग हो सकता है और उसका यह दुबला-पतला शरीर मोटा हो कर लड़के को तन्दुरुस्ती का कारण बन सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सक की सम्मति के अनुसार लड़के को उपवास कराये गये और पूर्ण रूप से उपवास के प्रयोग दिखाये गये। पहला ही उपवास तेरह दिनों का दिया गया लेकिन उपवास के दिनों में प्रति दिन एक बार सन्तरे का रस और अगूर दिया जाता था। उपवास के इन तेरह दिनों में लड़के को कोई विशेष कष्ट न हुआ। उपवास तोड़ने के बाद कुछ दिनों तक उसके

जन में बहुत सावधानी से काम लिया गया। इसका फल यह था कि उस लड़के की पाचन-शक्तियाँ उत्तरात्तर बलवान होती रहीं। और एक महीने के परचान् वह ठीक-ठीक अपना काम करने लगीं।

इसके परचान् भी लड़के के लिए प्राकृतिक भाजा देने की ही प्रवस्था रखी गयी। तीन महीने के बाद लड़के का नशा बहुत दूर हो गया। अब उसको किसी ओषधि की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु वह खता था, भलो प्रकार उसको हजम कर लेता था। सिर्फ पश्याक स्थान पर लड़का फलों के खाने का अभ्यासी गया। इससे कुछ ही दिना में उसकी तन्दुरुती बहुत अच्छी लगी।

स्वप्नदोष का रोगी

लगभग चौबीस वर्ष के एक युवक को स्वप्नदोष का रोग था। इसका यह रोग कई वर्ष का पुराना हो गया था। सोलह-सहस्र वर्ष की आयु में ही वह बुरी सर्गात में पड़ गया था। इसके बाद स्वयं धीर्यपात कर देने की उसको लत पड गयी थी।

उसकी इस आदत के कारण उसका शरीर नर्बल होने लगा। भूख बहुत कम लगने लगी। प्रायः सिर में दर्द रहा करता। इसके माँ-बाप ने कितने ही वैद्यों को दिखाया, लेकिन न तो वैद्य उसका कारण ढूँढ़ सके और न उस युवक ने अपने असली कारण को बताया।

कुछ दिनों में उनका वीर्य बहुत पतला पड़ गया और स्वप्नदोष होने लगा। कुछ दिनों तक यह दशा रहने के बाद उसकी हालत बहुत खराब हो गयी। कभी कभी उनका चित्त भग रहने लगा। इस बीच में अनेक प्रकार की दवायें हुईं किन्तु कुछ लाभ न हुआ, अतः मैं यह एक प्राकृतिक चिकित्सक के पास गया। उहाँ रत्नर उसने उपवास के प्रयोग किया। तीन दिनों तक फेवल सन्तर का रस लिया गया। उसके बाद ग्यारह दिनों तक पूर्ण रूप से उपवास कराया गया। आरम्भ में पाँच दिनों तक नित्य एनोमा का प्रयोग किया गया और निच ठण्डे चीक रसाव दिये गये।

इसका फल यह हुआ कि उपवास की अवधि पूर्ण होने पर पहले ही युग्म का स्वप्नदोष मिट गया। उसको निरन्तरता अर्थात् मालूम होती थी, किन्तु चित्त भग की शिकायत भी जाती रही। उपवास के अन्त में युग्म, पूर्ण नाराग हो गया और उसके परचन उसे फिर कभी स्वप्नदोष नहीं हुए। इस बीच में उसने अपने यौवन काल की भूलों को स्मरण किया और भविष्य में उनका द्वा देने की प्रतिज्ञा की।

कुष्ठ-रोगी

एक युवती को कुष्ठ का रोग हो गया था। विवाह के पूर्व उसको यह रोग न था, किन्तु विवाह के बाद ही इसमें शुरू आत हो गयी। कुछ दिनों तक वा अधिक न मालूम हुआ, किन्तु

धीरे धीरे उपकी वृद्धि होने लगा। शरीर में जर्ण-जर्ण सफेद दाग पड़ने लगे और धीरे-धीरे उठने लगे।

साधारणतया इस प्रकार का राग जिसका क समझ में नहीं आता और न आसानी के साथ उपकी जा सकती है। किन्तु जिसके साथ यह व्यापक था, वह पैमेवाला 'अदम' था। उसने कई स्थानों पर उपकी चिकित्सा कराई। बँध लाग रक्त-मशान के लिए अरु पिनाने रहे। अनरु मदीना क बाद भी रागी की दशा में कोई परिवर्तन न हुआ।

अतः उस स्त्री के पति ने एक उपवास चिकित्सक की महा-यज्ञा ली और उसे नियम पूर्वक उपवास के प्रयोग कराये गये। कुछ समय का अंतर देकर दो लम्बे उपवास दिये गये। पहल में तो कोई विशेष फल न हुआ, किन्तु दूसरे में सफेद दाग गायब होने लगे और उपवास का अतः हाते होते शरीर में एक भी दाग न रह गया। स्त्री के इस प्रकार सेहत होजाने के कारण पति को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने उपवास के प्रयोगों का महत्व स्वीकार किया और जीवन-भर उनके प्रचार की प्रतिज्ञा ली।

आमतौर से रोगों का मूल कारण कोष्ठयद्धता और मल का संचय है। इस कारण का निवारण करने में उपवास को सद्बल ही सफलता मिलती है। साथ ही रागों से लेकर, असाध्य रोगों तक उपवास के द्वारा आरोग्य किये जा सकते हैं। रोगी-दशा में भूख नहीं लगती। मनुष्य जिस भूख को अनुभव करता है, वह वास्तव में भूख नहीं होती वह भूठी भूख है और भूख के

नाम से केवल धारणा देती है। सही भूय उम समय तक तक
 लगती जब तक राग का निवारण नहीं हुआ जाता। उपवास का
 सबसे बड़ा सिद्धान्त यही है। भयानक-से भयानक रोगों में भी
 उपवास सफलतापूर्वक काम करता है।

दक्षिण भारत में वैजवादा नाम का एक स्थान है। वहाँ पर
 इण्डियन नेचुरोपैथिक एसोसियेशन (Indian Naturopathic Assoc-
 ciation) नामक एक संस्था है जो प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तों
 द्वारा शरीर को आरोग्य करने का काम करती है। इस संस्था में
 उपवास के द्वारा नियमानुसार चिकित्सा की जाती है। इस संस्था
 से दि इण्डियन नेचुरोपैथ (The Indian Naturopath नाम का
 एक मासिक पत्र निकलता है। उसमें प्रायः ऐसे रोगियों की चर्चा
 रहती है जो अपने असाध्य रोगों से उपवास के द्वारा आरोग्य
 होते हैं।

उस पत्र में आरोग्य होने वाले रोगियों के वर्णन पढ़कर कभी
 कभी आश्चर्य मालूम होता है और उपवास के महत्वपूर्ण प्रभाव
 जानकर विस्मित हो जाना पड़ता है। यदि उनमें से कुछ रोगियों
 का यहाँ पर वर्णन किया जायगा तो कदाचित् यह लेख आवश्यक
 कता से अधिक बढ़ा हो जायगा। इसलिए उनके संघ में
 अधिक न लिखकर, संक्षेप में कुछ परिचय दे देना ही आवश्यक
 मालूम होता है। निम्नलिखित रोगों में उपवास के प्रयोगों का
 प्रभाव एक विस्मयजनक बात है—

एक स्त्री की नारु में यह त्रुटि थी कि उसको कभी किसी प्रकार सुगन्धि और दुर्गन्धि का ज्ञान न हाता था। नारु को घ्राण-शक्ति उसमें इतनी दुर्बल थी कि वह नारियल के तल और इत्र नारु के द्वारा शुद्ध अंतर न समझती थी।

यद्यपि यह अग्रस्था साधारणतया किसी रोग में नहीं समझी जाती और न उससे कोई कष्ट ही था। फिर भी उपवास-शक्ति का परीक्षा के रूप में यह स्त्री उपस्थित की गयी। उसका वजन १७६ पौंड था। नियमानुसार उसने पन्द्रह दिनों का उपवास किया। उसका वजन २१ पौंड घट गया। उपवास के दिनों में उसकी घ्राण-शक्ति जाग्रत हुई और यह शक्ति धीरे-धीरे बढ़ने लगी। उपवास के पश्चात् उसकी घ्राणेन्द्रिय की त्रुटि बिल्कुल दूर होगयी।

एक आदमी को मानसिक निपलता थी और यह निपलता दिन-पर दिन बढ़ती जाती थी। उसका एक मप्ताह का उपवास दिया गया। पहले ही दिन उसने चिल्लाना शुरू किया और उसे मालूम हुआ कि मैं बहुत ज्यादा निपल हारता हूँ। उसको बहुत खार की भूख भी मालूम हुई। परन्तु उसे खाने को न दिया गया। इस पर उसे मालूम हुआ कि मैं कल तक मर जाऊंगा। नित्य गरम पानी का एनीमा दिया जाने लगा और छ दिनों तक लगातार दिया गया। उसकी ज्वान पर बहुत मोटी पपड़ी जमी हुई थी। छ दिनों के बाद उसकी ज्वान साफ होगयी। उपवास के बाद उसका नारु का रस दिया गया और पाँच दिनों के बाद

भोगे हुए गेहूँ या डो मात्रा में उमरु दिग्जने लगे। मानसिक
निर्बलता उमकी दूर हांगयी।

इस प्रकार क्षय के रागी पुराने आमाशय के रागी, वर
और प्रदर क रागी 'प्रसाय-मे-असाय' अस्था में उपवास
द्वाग से त्रिय जात हैं। छटे-छाटे बालक—एक-एक, डड-डड
वर्ष के वच्चे उपवास के प्रयोग करते हैं और उन बालक
में सेहत पात दे जाके अच्छे होन की आशा नहीं हाता उम
कि नाचे क उपाकरण से प्रमाणित है—

अट्टारह महीने की एक लडकी थी, उसके पेट में कुछ ऐसी
खराबी थी, जिमसे वह कुछ भी हजम न कर सकती थी। जो
कुछ वह खाती थी, वह बिना किसी परिवर्तन के उसके पेट से
निकल जाता था। लडकी की इस अस्था के कारण माता-पिता
बडे चिन्त में थे। उसने सात दिनों का उपवास दिया गया।
उपवास के दिनों में जब वह कुछ खाने का माँगती, शीतल और
शुद्ध जल दिया जाता। उपवास क कारण उसकी पाचन शक्ति
तीव्र होने लगा और उसके बाद लडकी तन्दुरस्त हागयी।
जिससे उसके माता पिता के जीवन-भर का चिन्त दूर हा गया।

इस प्रकार उपवास से आरोग्य हाते बाल न जाने कि
रोगियों के उदाहरण दिये जासकते हैं। जिनको जानकर उपवास
के महत्व पर विस्मय होता है। किन्तु ऊपर जो उदाहरण दि
गये हैं, वे उपवास के प्रयोगों का सफल प्रभाव सिद्ध करने
लिए परियोज्त हांगे।

१२-उपवास के प्रति लोगों का विश्वास

जैसा कि पिछले पत्रों में बताया जा चुका है, उपवास का प्रथम प्रारंभ उमका महत्व प्रबुद्ध प्रचारक, तत्कालीन समाज में लगा आरंभ है। उसका समय शरीर के लिए पर्याप्त मात्रा में भोजन और तपस्या के साथ यह जाड़ा गया। उपवास का लागू प्रयोग करते थे, वे लागू धार्मिक नियमों से ही करते थे।

समाज की गति के साथ-साथ उपवास का महत्व भी बढ़ने लगा और अन्त में वह उसे विद्वानों के हाथ में पड़ा, जिन्होंने उसकी वास्तविकता को स्वीकार किया। इसका महत्व का पश्चिम-विज्ञान ने सबसे अधिक समझा और उसका द्वारा उन लोगों ने शरीर-विज्ञान का स्वरूप पता लगाया।

आगे चलकर उन विद्वानों ने उपवास के समय में जो अनुभव किए, उनका उन्होंने चिकित्सा-विज्ञान का एक रूप दिया और उनसे शरीर परिमाणन एवं सतत जीवन का काम लिया। उन लोगों के अनुभवों में उपवास शरीर के राग-निवारण में बहुत उपयोगी सिद्ध हुए। अतएव प्राकृतिक जीवन की अनेक प्रकार की छानबीन करके उन विद्वानों ने उसका एक रूप निश्चित किया और उसके द्वारा प्राकृतिक उपायों से शरीर-परिष्कार का काम करना आरंभ कर दिया।

सत्र ने पहले उपवास के प्रयोगों का अंग्रेजी देशों में हुआ। वहाँ के विद्वानों के द्वारा इस विषय पर उपयोगी लिखी गयीं, विना शिक्तिन समुदाय में आदर हुआ। का यह महत्ता केवल उन्हीं देशों में सीमित न रही। वह उधर बढ़कर दूसरे देशों में भी फैलने लगी और उसका चारों तरफ प्रचार होने लगा।

वर्तमान चिकित्सा के साथ प्रतिद्वन्द्विता

सम्पूर्ण मानव समाज में औपधियों की चिकित्सा थी। चिकित्सकों का व्यापार ससार के इस कोने से लेकर फोने तक फैला हुआ था। विदेशों में जब उपवास के पुस्तकें लिखी गयीं तो पहले पहल बड़ी तिल्ली उड़ाई गयी औपधियों के पक्षपातियों ने उपवास पूर्वक विरोध किया और कहा—उपवास कोई चिकित्सा नहीं होती। कुछ लोगों ने यह कहा—उपवास सम्बन्धी बातें सम्यता के इस युग में जगल वाते हैं।

इस प्रकार कितने ही लोगो ने उपवास न्ये। परन्तु विद्वानों ने उपवास के सम्बन्ध में अनुभव किये वे पीछे हटने के बजाय, आगे बढ़ने लगे। उन लोगों ने और भी अधिक लिख और उपवास के महत्वों का समर्थन किया। धीरे-धीरे इन बातों का कुछ शिक्तिता पर प्रभाव पडा और जब रोगियों के ऊपर उनका अनुभव किया गया तो लोगों ने उसका अद्भुत प्रभाव

उत्पाद भी हुए। इसी बीच में उसके समयका का उन्म हुआ।
 उनके द्वारा, उपवास के प्रयोगों का समर्थन होने लगा। डॉ. लक्ष्मी
 औपधिया का प्रयाग करते-करते ऊन गये थे, और निरन्तर सास
 उनके असाध्य रोगों को अन्धकार करने का कोई उपाय न रह गया
 , उन लोगों ने उपवास के प्रयागकिये और उनका पूरा सरल
 ली।

इस प्रकार एक के बाद दूसरे ने उपवास के प्रयागकिये।
 से लाभ हुआ। उसके बाद दूसरा ने प्रयाग किये और
 फायदा हुआ। इस तरीके से धीरे-धीरे प्राकृतिक चिकित्सा
 महत्वपूर्ण साधन का प्रचार बढ़ने लगा।

उपवास के प्रति लोगों के विश्वास की वृद्धि

इन दिनों में उपवास के प्रयोगों का शिक्षितों में काफ़ी प्रचार
 गया है। देश के भिन्न-भिन्न नगरों में कुछ एना मस्थायें स्था
 हो गयी हैं, जो इन प्रयोगों का प्रचार करती हैं। इस बा
 हमारे देश में ऐसा साहित्य भी प्रकाशित हुआ है, जिनने दश
 शिक्षितों में इन प्रयोगों के महत्व की वृद्धि की है।

ध्यान यह दशा है कि एक खासी संख्या में लोग औपधियों
 विरोध करने लगे हैं। यही नहीं, स्थान-स्थान पर ऐसे आदमी
 जाते हैं जो अपने और अपने परिवार के रोगों में अथवा
 प्रयोग नहीं करते। ऐसे लोगों की जो संख्या पैदा होगी
 के द्वारा इन प्रयोगों के प्रचार में और नो अधिक सहायता

रही है। जो सत्य है, उसका अस्तित्व कभी मिट नहीं
ता।

यह कहना अनुचित न होगा कि ओपधियों का प्रचार,
न समस्त सत्तार में रुन होता जारहा है और चिम्तिता के
कृतिक विधानों का प्रचार दिन-पर-दिन बढ़ता जाता है। इसके
य में जो दशा वर्त्तमान है, उसका देगम्बर कहना पडता है
मन्त्रिय मे अपदे चिम्तिता का स्थान बहुत कम रह
गा।

१३-शरीर में उपवास का प्रभाव

जो ताग उपवास के समय में कुछ अभयन करना चाहते हैं
 अपना शरीर को आराम बनाने के लिए उपवास का
 आश्रय लेना चाहते हैं उनके लिए यह जानना बहुत आवश्यक है
 कि शरीर में उपवास का क्या प्रभाव पड़ता है ?

सचमुच उपवास का प्रश्न एक महत्वपूर्ण प्रश्न है और इसका
 आलाचना ही समस्या अत्यन्त परित्र है। जा लाग इसका क
 निक प्रभाव में अनभिज्ञ हैं, वे इसके प्रभाव को न अनुभव
 सकते हैं और न उसकी जानकारी ही रख सकते हैं। इसमें क
 आश्चर्य ही बात नहीं है। ऐसे बहुत से वैज्ञानिक आविष्कार हैं
 हैं, जिनके आविष्कार के पूर्व कोई भी उन पर विश्वास न कर
 सकता था। जब तक वायुयान न बने थे, कोई भी इस बात को
 न सोच सकता था कि मनुष्य की सवारी पत्तियों की भँति ऊपर
 आकाश में उड़ सकती है। आज भी जिस देश में वायुयान
 होते हैं, अथवा जिन्होंने वायुयान न देखा हो, उनका विचार
 वायुयान के संभव में नहीं हो सकता।

इस युग में न जाने कितने नित नये वैज्ञानिक यंत्रों का
 आविष्कार होता रहता है। हम सब लोग जब तक उनका देख
 नहीं लेते, तब तक अविश्वास किया करते हैं और जब देख
 लेते हैं तो उस पर विश्वास करने लगते हैं। ऐसा होता ही रहता है।

उपवास की क्रिया क मरुत म भी गने गत है । जल तोंग उसप अरुनित १ उरुन आरुगण नरुभरुत २ ओर नरुन लोगो ने उनरु नरुत । नरुतुभरु तरुन है नरुत नरुतान स्याभरुन १ ।

यदु ररुत लोण गल गल गल १ तरु नरुतान नरु तरुनारुओ के दुररुत शरीर नरुत नरुत गल १ नरु नरुतु गल म नरुतान क जल सूदुत प्रभरुत नरुत १ ने अरुत नरुतुण अरुत नरुतुत हलत है । नरुत की नरुतान म उपरुत नरुत शरुतारुत प्रभरुत नरुत नरुतुत नरुत नरुतानी जलरुगी ।

सचित मल का निकालना

हमारे शरुत म उपरुत नरुत नरुत नरुत नरुत नरुत नरुत नरुत है, यह है—सचित मल नरुत नरुत नरुत । नरुतुत के अरुत म यह नरुतान गलत है करु हमरुत शरुत म नरुत नरुत मल कल सचित हलन लगतल है ओर उसके नरुत से नरुत नरुत नरुतुत रोगी नरुतल है ? यहल नरुत उरुतुत नरुतुत की अरुतुत नरुत नरुत है । हल नरुत, उपरुत हमरुत शरीर मे सचित नरुतल कल यह करुते है कल जल मल नरुतुत नरुतुत है उसको शरीर से नरुत नरुतुत है । रोग उपरुत होने के नरुत ओर नरुतुत—नरुतुत अरुतुतुत म इस नरुतुत मल नरुतुतुत की अरुतुतुत नरुतुत है ।

नरुत लोगो को इन नरुतुत की जलनकरी है, ये लोग उपरुत के दुररुत मल नरुतुतुत कल कलरुत नरुतुत रहते है । कोरुत भी

मनुष्य इस बात का सरलतापूर्वक समझ सकता है कि हमारे शरीर में मल का संचय हो रहा है। इतना जानने के बाद उनका यह कर्तव्य होता है कि एकत्रित मल का निःसर्जन शरीर को शुद्ध कर ले। अन्यथा विभिन्न प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होंगी।

कुछ लोग प्रश्न कर सकते हैं कि जिनको मल के संचय होने का ज्ञान नहीं होता, उनको किस प्रकार उसकी जानकारी होने चाहिए? हमारी समझ में यह बहुत साधारण बात है, जिस प्रत्येक मनुष्य समझता है और समझ सकता है। फिर भी यहाँ पर यह लिख देना आवश्यक है कि किन बातों से सचित मन की सूचना मिलती है—

१—मल-विसर्जन के लिए जब मनुष्य टट्टी या जगल में जाता है और जब वह विमजन का कार्य कर चुकता है तो इस बात को वह स्वयं समझता है कि विसर्जन का कार्य भली प्रकार हुआ या नहीं।

२—जब पेट में मल संचित होने लगता है तो मनुष्य को सच्चा भूख मारी जाती है और वह सूंठी भूख के लिए भावना प्रकिया करता है।

३—पाने के पदार्थों में सुन्धि का अनुभव नहीं होता। साथ ही स्वस्थ मालूम होती हैं।

४—मुख का अन्तरंग भाग शुष्क होना दृश्यावधि है, किन्तु जिन्हें पेट साफ नहीं रहते और मल संचित होने लगता है। उनके

हमें धार-धार पानी आता रहता है और वे एक एक क्षण में
 बूझने का काम किया करते हैं।

५—निब्हा पर मेल जम जाता है।

६—मिचली-सी मालूम होती रहती है।

७—मल के अधिक संचित हो जाने पर उपवासों अ या
 करती हैं और कभी-कभी वमन भा हो जाता है।

८—खट्टी डकार आया करती हैं।

९—तन्नायन अनमनी रहती हैं। शरर से प्रोत्साहन माया
 जाता है।

१०—आलस्य भग रहता है। काम करने का साहस नहीं
 होता।

११—मुख भाग से जा वायु बाहर निकलती है, उसमें
 दुग्न्धि मालूम होती है।

१२—शरर से पसोना नहा निकलता।

१३—जिसके शरीर में मल का सचय रहता है, उसको
 भूठी भूख अधिक लगती हैं और थाडी देर भी भोजन न मिलने
 से चेहेनी मालूम होती है।

उपरोक्त लक्षणों से स्पष्ट पता चलता है कि शरीर में मल
 का सचय हो रहा है। जा लाग इन लक्षणों से सतर्क एवं साव-
 धान रहत हों, वे पहले ही और दूसरे ही दिन मल के सम्बन्ध में
 जान लते हैं और मल के ठीक-ठीक विसर्जन न होने पर साधारण
 रूप में आध दिन का या एक दिन का उपवास करके आमाशय

की क्रियाओं को ठीक कर लेते हैं। इस प्रकार उपवास मन
जर्न का काय करता है।

शरीर का संशोधन

प्रत्येक यंत्र की सफाई की जाती है। किसी भी मशीन
अधिक टिकाऊ बनाने के लिए उसकी भातरी और बाहरी भागों
परते रहना अत्यन्त आवश्यक होता है। मशीन के लिए
बड़े-से-बड़े किसी यंत्र की सफाई, उसके छोटे-बड़े पुराने
खोलकर की जाती है और जब सफाई पूर्ण रूप से हो
जाती है तो चतुर मशीनमेन उसको फिर फिट कर लेता है। मशीन
का शरीर-यंत्र मशीन के समान है। परन्तु शरीर वा मशीन
में और किसी मशीन की मशीनरी में अंतर है। मशीन का
अंतरण कर उसके एक-एक पुराने को अलग किया जा सकता है
और उसकी सफाई होती है। उसके पश्चात् उसको फिर जोड़
जाता है। परन्तु शरीर की मशीनरी में ऐसा नहीं किया
जा सकता।

फिर भी बाहरी सफाई के साथ-साथ भातरी सफाई
आवश्यक है। जब शरीर की मशीनरी खोलकर अलग
नहीं की जा सकती तो फिर उसकी सफाई कैसे हो सकती है।
सफाई के लिए यंत्रों और औजारों का पहुँचना तो दूर, वहाँ
मनुष्य की दृष्टि भी नहीं पहुँचती, फिर शरीर के भीतर, उ
आन्तरिक छोटे-से छोटे अंगों, अवयवों और सूक्ष्म स्नायुओं
की सफाई कैसे हो ?

दूसरी नीराग । जिसका सकाई नहीं हाती रहती, वह एग
 और जिसकी सकाई हाती रहती है, वह नीरोग है । राग
 नीरोग में जितना अन्तर होता है, उनक कामों में तितना अन्तर
 पाया जाता है, वही दोना मशीनों में अन्तर मिलेगा ।

इसी प्रकार हम दा आदमी लल । एक वह जो उपवास कर
 अपने शरीर का सशोधन किया करता है और दूसरा वह, जिस
 शरीर का इस प्रकार कमी सशोधन नहीं होता । क्या कोई क
 सकता है, दोनों में कितना अन्तर होगा ? उन दोनों में क
 अन्तर होंगे आर इस प्रकार होंगे—

१—एक के शरीर में स्फूर्ति आर प्रास्ताहन हागा । दूसर
 शरीर मलमूण आर विकारमूर्ण हाग ।

२—एक का शरीर आरोग्य क प्रकाश से प्रकारान हा
 और दूसरे का रागों की छाया से छायामूण ।

३—एक का शरीर सदा-सबदा किसी-न किस, राग क
 शिकार हागा आर दूसरे का शरीर सदा नाराग आर आराम
 हागा ।

४—एक की शारीरिक आर मानसिक मनोवृत्तियाँ परम शुद्ध
 और पवित्र हागा आर दूसर की अशुद्ध आर अपवित्र ।

५—एक के मनाभाव सदा प्रकृत क अनुगमी आर ईश्वर
 के प्रति विश्वासमूण होंगे आर दूसर क मनाभाव सतत राग-शाक
 आर भोग आदि निम्नो स पारमूण, प्रकृति क प्रतिकूलगायी
 तथा ईश्वर के डर स निरतर मयमात हागे ।

इस प्रकार दोन शरीरों में और दानो मनुष्यों में अन्तर होगा। अब क्या कोई बता सकता है कि इस प्रकार क महान अन्तर का कारण क्या है? क्या कोई बता सकता है कि शरीर-शोधन के अतिरिक्त इस विशाल भ्रम का और क्या कारण हो सकता है? बिल्कुल सीधी-सी बात है। इसको समझने क लिए छोड़े से ज्ञान को आवश्यकता है। जम, कोई भी समझ सकता और लाभ उठा सकता है।

पाचन-क्रियाओं को शक्ति देना

शरीर में उपवास के, उपर दो काम बताये गये हैं। तीसरा काम उपवास का पाचन-क्रियाओं को शक्ति देना है। अन्य कामों की अपेक्षा उपवास का यह काम अधिक महत्वपूर्ण और वैज्ञानिक है। हमारे पेट के भीतर जा आ पाचने की क्रिया करते रहते हैं, उनका उत्तेजना देना, प्रलयान बनाना और उनमें अधिक कायशीलता पैदा करना उपवास का काम है।

जिनके शारीरिक अग्रयन पाचन-क्रिया में निर्मल पाये जाते हैं, खाया हुआ भोजन सहज ही जा पवा नहीं सकते और जा अपनी इस निर्मलता के लिए निरंतर दुखी रहा करते हैं, वे अपनी इस कमचोरी को दूर करने के लिए पुष्टिकारक दवाओं का सेवन करते हैं। किंतु कोई फल नहीं होता। फल न हाने का कारण है और यह यह कि दवाओं के द्वारा पाचन-क्रिया करने वाले अंगों को शक्ति नहीं मिल सकती। जा लाग इसके लिए दवाये देते हैं,

वे भूठा व्यापार करने हैं। सच्ची बात यह है कि इस तरह की अपेक्षा हाथि होती है और वे अग गति पाने करवाने निचल हा जात हैं।

जा कृषक चतुर होते हैं, व अपनी भूमि को उपजाऊ बनाने की चेष्टा किया करत हैं। उनको उसमें सफलता भी मिलती है। जो जमीन इस मन गेहूँ पैदा कर सक्ता है, उसमें इसका हाथ उपज भी जा सक्ता है। किन्तु, कैसे ?

जो लोग कृषि-विज्ञान का जानते हैं, उनको इस बात का ज्ञान होता है कि जिस जमीन का परापर प्रयोग किया जाता है, उसकी शक्ति गीर-गीरे निर्मल होती जाती है और उसका शक्तिशाली बनाने एवं स्वाभाविक रूप से उसमें शक्ति उत्पन्न करने के लिए कम से-कम एक वर्ष उसमें प्रयाग पद कर दिया जाता है। जिन वर्षों उसका जातने-पाने के काम में नहीं लाया जाता, उस वर्ष उसका खाद और पानी भी देने की जरूरत नहीं हाता। ऐसा करने से आगामी वर्ष के लिए उस भूमि की उपज बढ़ जाती है और फिर परापर कई कई वर्ष तक उसमें अच्छी उपज हाती है। यह नहीं, जिस जमीन में ज्वार और मक्का पैदा होता रहता है, यदि उसमें कृषक, गेहूँ पाना चाहता है तो उसके लिए यह आवश्यक होता है कि वह उस जमीन को कम से-कम एक फसल के लिए यों ही पड़ा रहने दे और उसमें कुछ जोतने-पाने का काम न करे। ऐसा करने से भूमि की उपज बढ़ जाती है। हमारे शहर में उपवास जो काम करत है, वही काम भूमि के लिए हाता है।

ता जोर से होता है। प्रायः चरम १५-२० दिनों उपवास
 ने मधुमेह (ग्लूकोस का हाई कंट्रोल) को नियंत्रित करने में
 काम है, किन्तु चरम २-३ दिनों के उपवास किया जाता
 है। उच्च शर्करा स्तरीय प्रशासन के अभाव में। उन
 पर, प्रयोग मिलने से उपवास के फायदे का पता चलता है।
 न केवल उपवास का प्रयोग प्रयोग के अभाव में प्रयोग
 व जाता है। पाचन क्रिया का गति विना प्रयोग के
 १५ दिनों के, उच्च शर्करा स्तरीय प्रयोग के

जो लोग दवाओं के द्वारा शर्करा को नियंत्रित करते
 हैं, वे भूल सकते हैं। उनका लिए उपवास का प्रयोग उपवास के
 योग है। एसा करने से उनकी मधुमेह का सन्तुष्टि और
 प्रयोग पाचन विनियमन दूर हो सकती है।

मन को शुद्ध और प्रसन्न करना

उपवास का यह चाचा प्रभाव है। तमक द्वारा मनुष्य को
 मानसिक शुद्धता और प्रसन्नता प्राप्त होती है। जबकि इस प्रभाव
 के द्वारा उपवास शरीर का निम्न करने का कार्य करता है।

जिनके शरीर में मल और विकार भर रहते हैं उनके चित्त
 कभी प्रसन्न नहीं रहते। इस बात का वे स्वयं समझते हैं और
 उनको देखने वाला जात हैं। उपवास करने से, उसी दिन से
 शरीर में शुद्धता और प्रसन्नता पैदा होने लगती है।

यद्यपि मनुष्य स्वभावतः विकार प्रेमी नहीं है किन्तु विकार
 में रहकर उसकी मनोवृत्ति सहनशील बन जाती है। होता यह

है कि यों तो कोई भी रोगी नहीं होना चाहता और एक मनुष्य किसी के रोग को देखकर अप्रियता का अनुभव परन्तु वही मनुष्य जब अधिक समय तक रोगी बन उसकी मनोवृत्तिआ की स्वाभाविकता धीरे-धारे नष्ट हो जाती और रोगी अवस्था के प्रति सहनशीलता का भाव पैदा होता जाता है।

यही अवस्था विकारपूर्ण मनुष्य की होती है। चिकित्सा में विकार नहीं रहता, जो अपने शरीर का मूल-वसतन करके अनेक प्राकृतिक उपायों द्वारा शरीर को शुद्ध तथा निमल बना करके हैं। उनके मन के भाव जितने प्रसन्न और शुद्ध रहते हैं उतने उस मनुष्य के नहीं रह सकते, जिसका शरीर विकार से लदा हुआ है। दानों में इस प्रकार का अन्तर विशेष मात्रा में स्पष्ट बना रहता है।

इस प्रकार शरीर में अनेक भाँति के प्रभाव काम कर रहे हैं। जिनके मुख्य काम पर ऊपर प्रकाश डाला गया है। य काम स्पष्ट रूप से बताते हैं कि न केवल नीरोग रहने के लिए उपवास के प्रयोग किये जाते हैं, बल्कि इनके द्वारा हमारा शारीरिक और मानसिक परिष्कार हाता है और उसी दशा में हम जीवन की चञ्चलता की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

जा लोग उपवास के सम्वन्ध में अज्ञान होते हैं, वे उपवास को कुछ अनिष्टकर समझा करते हैं। इसका केवल कारण यह है कि उनको इन बातों का ज्ञान नहीं है और अज्ञानता अनेक प्रकार

। भ्रान्तियों उत्पन्न करने का काम करती है। न जाने गेस कितने गहरण देखे जाते हैं कि जो लोग उपवास के पक्ष में नहीं थे मय और सयोग पडने पर उन्होंने उसके प्रयाग का टेग्या, उससे भ उठाया और अन्त में उसके भक्त होगय। कुछ ऐसे आदमी लो हैं जिनके रोग किमी चिफ्टिसा के द्वारा नहीं अन्त्रे हुए, न्तु विवश अवस्था में उनको उपवास की शरण लना पडी।

इन बातों से इस बात का पता चलता है कि निन लोगों को उपवास के चमत्कार देखने और जानने का स योग नहीं मिला, उ कारण उसके प्रति उनमें एक अहितकर भावना भरी रहती है कि जब उनके हृदयसे यह अजानकार अवस्था दूर हा जाती ता वे ही मुक्त कण्ठ से उसके प्रशंसक हो जाते हैं। इस प्रकार उदाहरण हमारे पास बहुत हैं। किन्तु उन सय का यहाँ लेखना अनावश्यक-सा मालूम होता है।



१४--उपवास का मानसिक प्रभाव

उपवास का जिस प्रकार शरीर के साथ सम्बन्ध है, प्रकार और कहीं-कहीं उससे भी अधिक उसका मानस सम्बन्ध है। मनुष्य के मन में जो विकास की शक्ति है, लिए कम और कम प्रकार उपवास की आवश्यकता है। इस पर यहाँ कुछ विवेचना करनी है।

यद्यपि मानसिक भाग शरीर के सम्पूर्ण अंग का एक भाग है किन्तु शरीर के अन्य भागों को अपेक्षा मानसिक भाग में है। समस्त शरीर की अपेक्षा मनुष्य का मन अत्यन्त सूक्ष्म तत्वों के द्वारा बना हुआ है। मनुष्य जाति का कार्य करता है, वे कार्य भी सूक्ष्म और कामल हाते हैं। अतः यह कि मानसिक कार्यों की, शारीरिक कार्यों के साथ इसी की विभिन्नता है।

मस्तिष्क की उपमा छोटी किन्तु मूल्यवान घड़ियों के दी जा सकती है। जो लोग घड़ियों के संबंध में अधिक नहीं रखते, वे किसी बड़ी घड़ी को देख कर, उसकी बड़ी की अनुमान करते हैं और छोटी घड़ी को देख कर छोटी समझते परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं होती। जो घड़ी बिलकुल ही होती है, उतनी ही वह अधिक मूल्यवान होती है। उसके कार्य अत्यन्त सूक्ष्मतर होते हैं।

इस छाना घड़ियों की भाँति मनुष्य क मस्तिष्क में जान जाये
 कन द्रष्ट-गटे अथवा राम करा । । दगा रग पर त, इतन
 सूक्ष्म तन्तुओं का कार्य होता है जा न-नी समक न रग आत ।
 इन मन्त्रय व डाक्टर लोग अधिक मात्रा में रग का चष्ट
 करत हैं। इन सूक्ष्म तन्तुओं और अन्यन्त कामल प्रग स रना
 इया मस्तिष्क, शरीर के अन्य भागा की अपना अधिक परिष्कार
 चाहता है ।

साधारण-म साधारण मनुष्य भी इन रग का जान है कि
 बड चरा की अथवा ठोटे चरा म चन्द्रता की अधिक आय-
 रता होता है । पैरगाडा भी एक प्रकार की लच्छा की मीन
 परन्तु उसकी अपना वाइजिन अधिक चन्द्रता चाहती है । इस-
 मिल की अनिश्चत मोटर के इजिन और उन स रलगाडी का इजिन
 अधिक परिष्कार चाहता है । इसका कारण केवल मशीनरी है ।
 यदि नरु मात्र अधिक चन्द्रता और परिमाणन स काम न
 लिया जाय ता यह निश्चित है कि उनक कन और पुरजे चराय
 हा जाय । उनके घिगडने से समस्त मशीनरी ही बेकार हा जाय ।
 इमालिए उनके सत्रय में अधिक साधानी से काम लिया
 जाता है ।

तपश्चर्या और उपवास

इसके पहले हम लिख आये हैं कि प्राचीन काल में उरवाम
 तपस्या के साथ चोडा गया था । जो लोग तपस्या करते थे, वही
 लोग अधिक उपवास किया करते थे । ऋषि और मुनि उपवास

को अपनी तपस्या का एक अंग समझने थे। यही नहीं बल्कि हमारे देशों में भी उपवास का सत्रय सम्पूर्ण रूप से मान्य माना जाता था।

हमने ऊपर लिखा है कि वास्तव में धर्म और इश्वर के साथ उपवास का कोई सम्बन्ध नहीं है। उपवास करने से इश्वर प्रसन्न होता है और न देवता। फिर प्राचीन काल में उपवास का उसके साथ क्यों संबंध जोड़ा गया था यह विचारणीय समस्या है। क्या हमारे पूर्वजों ने उपवास का उचित गलत किया था? तपस्या और धर्म के साथ उपवास का सम्बन्ध न होने पर भी पूर्वजों ने भ्रम नहीं किया था। यदि उपवास आवश्यकताओं पर अनुशीलन किया जायता सहज ही उचित मन्तव्य का समझा जा सकता है और यह मालूम किया जा सकता है कि उनका जो अभिप्राय था, वह निरर्थक नहीं था।

मस्तिष्क का कार्य

मस्तिष्क सोचने-विचारने का कार्य करता है। यह कार्य हाथों पैरों के कार्यों से भिन्न होता है और स्नायु-घात को सभी जानते हैं कि सोचने-विचारने का एक समान नहीं होता। शारीरिक शक्ति शक्ति होती है। जिस प्रकार शरीर शक्ति से उठाय जा सकते हैं।

मस्तिष्क का
कार्य सरल है।

जतनी अधिक मानसिक शक्ति हाती है, उतना ही अधिक वह शील होता है।

प्रत्येक मनुष्य अपने आप को विचारशील बनाना चाहता प्ररन्तु सभी चाहने वाले विचारशील नहा बन गन। विचार उत्पन्न करने के लिए मानसिक बल की आवश्यकता हाती है। मानसिक बल उन्ही मे उत्पन्न हाता है जिसके शरीर ठीक प्रकार होते हैं। विकारपूर्ण शरीर के मनुष्य मे मानसिक बल नहीं होता। विचारो के प्रति जन् तक मानसिक शक्तिया सलग्नता नहीं उत्पन्न होती, तन् तक विचारशीलता का उर्भाव नहीं होता। जो मनुष्य मानसिक कार्यों मे अधिक तन्मय जाता है, उसमें विचारशीलता अधिक पायी जाती है। सलग्नता और तन्मयता के लिए मस्तिष्क की निश्चल रूप-रग्य की आवश्यकता हाती है। वह रूप रेखा और पद पत्र प्रकार उपवास के बिना मस्तिष्क मे नहीं उत्पन्न हा सकती।

अभ्ययन और मनन तपस्या है। तन्मयता, और सलग्नता तपस्या है —

यह तपस्या चाहे साहित्य के प्रति हो, चाहे राष्ट्र के प्रति हो और चाहे वह ईश्वर के प्रति हो। इस तपस्या के बिना राष्ट्र नी कृतता नहीं मिलती। सफलता के लिए तपस्या की आवश्यकता होती है और तपस्या के लिए तन्मयता तथा सलग्नता की। यह तपस्या और सलग्नता अत्यन्त मितान्तर चाइती है। उपवास, तपस्या का एक एक अंग है। जो लोग उपवास के द्वारा शरीर

का एव मानसिक अंग का सशासन नहीं करते उनमें तन्मयता और सलग्नता की शक्ति नहीं उत्पन्न होसकती।

पूर्वकाल में जा लोग तपस्या करने थे, और ईश्वर की आर्धना में इतनी अधिक तन्मयता से काम लेते थे, जिससे वे अपने आपको ईश्वर की शक्तियों में मिश्रित करदें, मिताहार और उपवास से काम लते थे। इसके बिना मानसिक शक्तियों का विकास नहीं हो सकता, यह निश्चय है।

मानसिक शक्ति

ऊपर की आलोचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि मानसिक विकास के लिए किस प्रकार उपवास के प्रयोगों की आवश्यक पड़ती है। हम यहाँ पर यह स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि उपवास के बिना चाहे शरीर आरोग्य रह सके, रोग निवारण का काम चाहे औषधियों के द्वारा किया जासके, किन्तु मानसिक विकास मिताहार और उपवास के बिना असम्भव है।

यदि ससार के प्रतिभाशाली व्यक्तियों की ओर देखा जाय तो मालूम होगा कि उनके शरीर हलवाइयों की तरह माटे-पारे नहीं होते। उनके दुबले-पतले शरीर केवल मिताहारी होते हैं। उनके दुर्बल शरीर, ऐसा मालूम होता है, मानो विचारशालता की तपस्या में घुल गये हैं। उनके शरीर, तपस्या का स्पष्ट परिचय देते हैं और वह तपस्या तन्मयता के द्वारा उत्पन्न हुई है। माटे मनुष्यों में तन्मयता और सलग्नता नहीं होती।

मनुष्य जीवन के माल्यकाल से ही मानसिक विकास का क्रम आरंभ हो जाता है। कुछ विद्वानों का कहना है कि शारीरिक विकास और मानसिक विकास परस्पर प्रतिद्वन्दी हैं। इस विभिन्नता का परिणाम यह होता है कि जहाँ शारीरिक विकास होता है, वहाँ मानसिक विकास नहीं होता और जहाँ मानसिक विकास होता है वहाँ शारीरिक विकास नहीं होता। देखने में भी यही बात मालूम होती है। एक पहलवान में मस्तिष्क-बल नहीं होता और कोई प्रतिभाशाली मनुष्य पहलवान नहीं होता। ये दो मनुष्य हैं और दोनों एक, दूसरे से पृथक् हैं।

ऐसी दशा में यह कहा जा सकता है कि शारीरिक विकास और मानसिक विकास साथ-साथ नहीं हो सकते। परन्तु शरीर-विज्ञान के पण्डित इसका समर्थन न करेंगे। जहाँ शरीर का विकास होता है, वहाँ मानसिक विकास को, विकसित होने के लिए सुभोता मिलता है। शरीर विज्ञान का यह कहना है। फिर जो लोग कहते हैं कि शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ साथ-साथ विकसित नहीं होती, इसका कारण क्या है ?

कारण स्पष्ट है। शरीर-विज्ञान के पण्डित, पहलवानों के शरीरों को शारीरिक विकास में नहीं मानते। आरोग्य विज्ञान के अनुसार पहलवानों के शरीर अत्यधिक रोगी होते हैं। उनके शरीर में विकार और मल की पराकाष्ठा होती है। इसलिए शरीर विज्ञान के अनुसार, शारीरिक विकास का वहाँ तक सम्बन्ध

हैं जहाँ तक वह आराम्य है। आराम्य शरीर हाँ पर
सिक विकास होता है।

जिनका शरीर गमा है अथवा जो प्रायः रागी रहा करते हैं
न ता मस्तिष्क-भरा उत्पन्न होता है आर न प्रतिभाशाली
में उनका गणना होती है। किसी भा देश के प्रतिभाशाली
इस बात के प्रमाणस्वरूप हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों में
सदाचार, और मिताहार होता है। इस बात का सग
रखना चाहिए कि जहाँ मिताहार है, वहाँ उपवास है आर
उपवास है, वहाँ मिताहार है। मिताहारी, शरीर का शुद्धि क
उपवास का आश्रय लेता है।

जो लोग अपने आप में मानसिक विकास चाहते हैं
प्रतिभा उत्पन्न करना चाहते हैं, उनका लिए तो यह आश्रय
अवश्यक है कि वे अपना शरीर सदा शुद्ध आर आराम्य रखें
मानसिक-फल उत्पन्न करने का यह पहला साधन है। इ
पश्चात् उनका दूसरे साधना से काम लेना पड़ता है। परन्तु
बात पर विश्वास करना चाहिए कि जिनका पहला साधन
नहीं होता, उनका अगले साधन अधिक लाभकर नहीं सिद्ध हो

उपवास के दिनों में परिश्रम

कुछ लोगों का कहना है कि उपवास के दिनों में परिश्रम का
कार्य नहीं होता। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि उपवास
दिनों में परिश्रम का कार्य करना भी न चाहिए। परन्तु जि

विज्ञान अज्ञान विद्या है कि ज्ञान का - १०
 ल। ज्ञान कला है कि ज्ञान के - ११ २०
 खन विद्या उन्नतता है ज्ञान कला का २
 ज्ञान विज्ञान के द्वारे है ३ - ४ २५ ४६
 विद्या कला है कि विज्ञान कला का ५ २६ ४६ ४७
 ज्ञान कला है कि विज्ञान कला के ६ २७ ४७ ४८
 ज्ञान विज्ञान कला के ७ २८ ४८ ४९
 ज्ञान विज्ञान कला के ८ २९ ४९ ५०
 विज्ञान कला के ९ ३० ५० ५१
 विज्ञान कला के १० ३१ ५१ ५२
 विज्ञान कला के ११ ३२ ५२ ५३
 विज्ञान कला के १२ ३३ ५३ ५४
 विज्ञान कला के १३ ३४ ५४ ५५
 विज्ञान कला के १४ ३५ ५५ ५६
 विज्ञान कला के १५ ३६ ५६ ५७
 विज्ञान कला के १६ ३७ ५७ ५८
 विज्ञान कला के १७ ३८ ५८ ५९
 विज्ञान कला के १८ ३९ ५९ ६०
 विज्ञान कला के १९ ४० ६० ६१
 विज्ञान कला के २० ४१ ६१ ६२
 विज्ञान कला के २१ ४२ ६२ ६३
 विज्ञान कला के २२ ४३ ६३ ६४
 विज्ञान कला के २३ ४४ ६४ ६५
 विज्ञान कला के २४ ४५ ६५ ६६
 विज्ञान कला के २५ ४६ ६६ ६७
 विज्ञान कला के २६ ४७ ६७ ६८
 विज्ञान कला के २७ ४८ ६८ ६९
 विज्ञान कला के २८ ४९ ६९ ७०
 विज्ञान कला के २९ ५० ७० ७१
 विज्ञान कला के ३० ५१ ७१ ७२
 विज्ञान कला के ३१ ५२ ७२ ७३
 विज्ञान कला के ३२ ५३ ७३ ७४
 विज्ञान कला के ३३ ५४ ७४ ७५
 विज्ञान कला के ३४ ५५ ७५ ७६
 विज्ञान कला के ३५ ५६ ७६ ७७
 विज्ञान कला के ३६ ५७ ७७ ७८
 विज्ञान कला के ३७ ५८ ७८ ७९
 विज्ञान कला के ३८ ५९ ७९ ८०
 विज्ञान कला के ३९ ६० ८० ८१
 विज्ञान कला के ४० ६१ ८१ ८२
 विज्ञान कला के ४१ ६२ ८२ ८३
 विज्ञान कला के ४२ ६३ ८३ ८४
 विज्ञान कला के ४३ ६४ ८४ ८५
 विज्ञान कला के ४४ ६५ ८५ ८६
 विज्ञान कला के ४५ ६६ ८६ ८७
 विज्ञान कला के ४६ ६७ ८७ ८८
 विज्ञान कला के ४७ ६८ ८८ ८९
 विज्ञान कला के ४८ ६९ ८९ ९०
 विज्ञान कला के ४९ ७० ९० ९१
 विज्ञान कला के ५० ७१ ९१ ९२
 विज्ञान कला के ५१ ७२ ९२ ९३
 विज्ञान कला के ५२ ७३ ९३ ९४
 विज्ञान कला के ५३ ७४ ९४ ९५
 विज्ञान कला के ५४ ७५ ९५ ९६
 विज्ञान कला के ५५ ७६ ९६ ९७
 विज्ञान कला के ५६ ७७ ९७ ९८
 विज्ञान कला के ५७ ७८ ९८ ९९
 विज्ञान कला के ५८ ७९ ९९ १००

यह बात साधारणतया लोग की समझ में न आती।
 मामूली ढंग से तो लोग यहाँ समझते हैं कि परिश्रम ही सब
 यदि एक समय भी पेट भर खाए न पाए तो दूसरे समय काम
 होना रुकित हो जाता है। फिर जा काम पारस, ७ ५ साधारण
 उपवास करने जतने परिश्रम जैसे जागता है। जिसे लोग का
 ऐसा विश्वास है वे यदि उनके सम्बन्ध में कुछ जागते हैं
 कर तो जतना भ्रष्ट विश्वास दृष्ट मरता है।

पहली बात तो यह समझ लेनी चाहिए कि जो लोग अशानाप, उलटा-सीधा खा-पीकर पेट-भर लिया करते हैं और शरीर सदा विकारों से परिपूर्ण रहा करते हैं, उनको भूख अधिक लगा करती है। यह बात परीक्षा से मालूम हुई है जिनके शरीर आरोग्य हैं उनकी अपेक्षा रोगी और विकार शरीर वाले मनुष्य भूख को अधिक अनुभव करते हैं। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि उनकी भूख सच्ची भूख नहीं है उनके भीतर जो मल और विकार मौजूद हैं, भूख की यह उनकी माँग रहा करता है। क्योंकि शरीर में सचित और त्रित मल भी खुराक चाहते हैं।

दूसरी बात यह है कि जब एक-आध दिन भोजन मिलता तो आरोग्य व्यक्तियों की अपेक्षा रोगी मनुष्य का भूख लगती है। कभी-कभी तो यहाँ तक होता है कि जब शरीर को नीरोग बनाने के लिए उपवास दिये जाते हैं, दूसरे ही दिन से भूख के मारे चिल्लान लगते हैं और कुछ ही समय बाद वे अपने शरीर में बहुत निर्बलता अनुभव करते हैं। पर कुछ लोग तो यह भी अनुभव करते हैं कि यदि एक-दो दिन भोजन और न मिला तो निश्चय ही मृत्यु हो जाएगी ऐसे लोगों को बड़ी सावधानी के साथ उपवास दिये जाते हैं किन्तु जैसे-ही-जैसे दिन आगे बढ़ते जाते हैं, उनकी भूख मरती जाती है और उसके स्थान पर उनके हृदय में शक्ति पैदा होती जाती है।

यह भी देखा गया है कि जो लोग पहले उपवास-काल में तनी निर्वलता को अनुभव करते थे उतना अनुभव उन्होंने दूसरी बार के उपवास-काल में नहीं किया। इससे भी यही सिद्ध होता है कि एकाग्रत विकारों के कारण जो भूख मालूम होती है, वह केवल विकारों और उनसे उत्पन्न होने वाले रोगों की मोग होती है। विकारों और रोगों की मात्रा जितनी ही कम होती जाती है भूठी भूख की मोग उतनी ही शान्त होती जाती है।

इसी आधार पर यह समझ लेना चाहिए कि उपवास काल में जिस निर्वलता को अनुभव किया जाता है, वह निर्वलता वास्तविक निर्वलता नहीं होती। यह निर्वलता भी भूख की तरह आरम्भ में मालूम होती है, किन्तु जो लोग उसको समझते हैं वे लाग उसकी परवाह नहीं करते और अपने परिश्रम का कार्य एवं व्यायाम परामर करत रहते हैं।

शिवागो की यूनीवर्सिटी में एक बार प्रोफेसरो और विद्यार्थियों ने एक सप्ताह का उपवास लेना निश्चत किया। यूनीवर्सिटी के अधिनाश विद्यार्थी और प्रोफेसर उसमें सम्मिलित हुए। नियमानुसार उपवास आरम्भ किया गया और सत दिनों तक प्रसन्नता पूर्वक चलाकर सभी लोगो ने एक साथ उपवास भग किया। उपवास के दिनों में सभी लोग शुद्ध जल में खून स्नान करते थे। प्रात काल कई-कई मील की वाकिग होती और फिर यूनीवर्सिटी में बराबर शिक्षा का कार्यक्रम पूरा होता था।

पहली बात तो यह समझ लेनी चाहिए कि जो लोग अनाप, उलटा-सीधा खा-पीकर पेट-भर लिया करते हैं और शरीर सदा विकारों से परिपूर्ण रहा करते हैं, उनको भूख अधिक लगा करती है। यह बात परीक्षा से मालूम हुई है जिनके शरीर आरोग्य हैं उनकी अपेक्षा रोगी और विकार शरीर वाले मनुष्य भूख को अधिक अनुभव करते हैं। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि उनकी भूख सच्ची भूख नहीं है उनके भीतर जो मल और विकार मौजूद हैं, भूख की यह उनकी माँग रहा करता है। क्योंकि शरीर में सचित और त्रित मल भी खुराक चाहते हैं।

दूसरी बात यह है कि जब एक-आध दिन भोजन न मिलता तो आरोग्य व्यक्तियों की अपेक्षा रोगी मनुष्य का भूख लगती है। कभी-कभी तो यहाँ तक होता है कि जब शरीर को नीरोग बनाने के लिए उपवास दिये जाते हैं, तो दूसरे ही दिन से भूख के मारे चिल्लाने लगते हैं और कुछ ही समय बाद वे अपने शरीर में बहुत निर्वलता अनुभव करते हैं। वरिष्ठ लोग तो यह भी अनुभव करते हैं कि यदि एक-दो दिन भोजन और न मिला तो निश्चय ही मृत्यु हो जावे। ऐसे लोगों को बड़ी सावधानी के साथ उपवास दिये जाते हैं किन्तु जैसे-ही-जैसे दिन आगे बढ़ते जाते हैं, उनकी भूख मरती जाती है और उसके स्थान पर उनके हृदय में शक्ति पैदा होती जाती है।

यह भी देखा गया है कि जो लोग पहले उपवास-काल में अपनी निर्मलता को अनुभव करते थे उतना अनुभव उन्होंने सरी वार के उपवास-काल में नहीं किया। इससे भी यही सिद्ध होता है कि एकत्रित विकारों के कारण जो भूख मालूम होती है, वह केवल विकारों और उनसे उत्पन्न होने वाले रोगों की मोग होती है। विकारों और रोगों की मात्रा जितनी ही कम होती जाती है मूठी भूख की मोग उतनी ही शान्त होती जाती है।

इसी आधार पर यह समझ लेना चाहिए कि उपवास काल में जिस निर्मलता को अनुभव किया जाता है, वह निर्मलता शारीरिक निर्मलता नहीं होनी। यह निर्मलता भी भूख की तरह आरम्भ में मालूम होती है, किन्तु जो लोग उसको समझते हैं, वे लोग उसकी परवाह नहीं करते और अपने परिश्रम का कार्य एवं व्यायाम परामर करत रहत हैं।

शिकागो की यूनीवर्सिटी में एक बार प्रोफेसरो और विद्यार्थियों ने एक सप्ताह का उपवास लेना निश्चय किया। यूनीवर्सिटी के अधिकांश विद्यार्थी और प्रोफेसर उसमें सम्मिलित हुए। नियमानुसार उपवास आरम्भ किया गया और सत् दिनों तक प्रसन्नता पूर्वक चलाने सभी लोगों ने एक साथ उपवास भग किया। उपवास के दिनों में सभी लोग शुद्ध जल में खूब स्नान करते थे। प्रातः काल कई कई मील की वाकिंग होती और फिर यूनीवर्सिटी में बराबर शिक्षा का कार्यक्रम पूरा होता था।

पहली बात तो यह समझ लेनी चाहिए कि जो लोग अनाप-शनाप, उलटा-सीधा खा पीकर पेट-भर लिया करते हैं और उनके शरीर सदा विकारों से परिपूर्ण रहा करते हैं, उनको भूठी भूख अधिक लगा करती है। यह बात परीक्षा से मालूम हुई है कि जिनके शरीर आरोग्य हैं उनकी अपेक्षा रोगी और विकारपूर्ण शरीर वाले मनुष्य भूख को अधिक अनुभव करते हैं। यहाँ पर यह समझ लेना चाहिए कि उनकी भूख सच्ची भूख नहीं होती। उनके भीतर जो मल और विकार मौजूद हैं, भूख की यह माँग, उनकी माँग रहा करता है। क्योंकि शरीर में सचित और एकत्रित मल भी खुराक चाहते हैं।

दूसरी बात यह है कि जब एक-आध दिन भोजन नहीं मिलता तो आरोग्य व्यक्तियों की अपेक्षा रोगी मनुष्य को अधिक भूख लगती है। कभी-कभी तो यहाँ तक होता है कि जब उनके शरीर को नीरोग बनाने के लिए उपवास दिये जाते हैं, तो वे दूसरे ही दिन से भूख के मारे चिल्लान लगते हैं और कुछ ही समय बाद वे अपने शरीर में बहुत निर्बलता अनुभव करते हैं। वहाँ पर कुछ लोग तो यह भी अनुभव करते हैं कि यदि एक-आध दिन भोजन और न मिला तो निश्चय ही मृत्यु हो जायगी। ऐसे लोगों को बड़ी सावधानी के साथ उपवास दिये जाते हैं। किन्तु जैसे-ही-जैसे दिन आगे बढ़ते जाते हैं, उनकी भूठी भूख मरती जाती है और उसके स्थान पर उनके हृदय में शक्ति पैदा होती जाती है।

यह भी देखा गया है कि जो लोग पहले उपवास काल में जितनी निर्बलता को अनुभव करते थे उतना अनुभव उन्होंने दूसरी बार के उपवास-काल में नहीं किया। इससे भी यही सिद्ध होता है कि एकाग्रत विकारों के कारण जो भूख मालूम होती है, वह केवल विकारों और उनसे उत्पन्न होने वाले रोगों की माँग होती है। विकारों और रोगों की मात्रा जितनी ही कम होती जाती है भूठी भूख की माँग उतनी ही शान्त होती जाती है।

इसी आधार पर यह समझ लेना चाहिए कि उपवास काल में जिस निर्बलता को अनुभव किया जाता है, वह निर्बलता वास्तविक निर्बलता नहीं होती। यह निर्बलता भी भूख की तरह आरम्भ में मालूम होती है, किन्तु जो लगे उसको समझते हैं वे लगे उसकी परवाह नहीं करते और अपने परिश्रम का कार्य एवं व्यायाम परावर करते रहते हैं।

शिजागो की यूनीवर्सिटी में एक बार प्रोफेसरो और विद्यार्थियों ने एक सप्ताह का उपवास लेना निश्चित किया। यूनीवर्सिटी के अधिकांश विद्यार्थी और प्रोफेसर उसमें सम्मिलित हुए। नियमानुसार उपवास आरम्भ किया गया और सत् दिनों तक प्रसन्नता पूर्वक चलाकर सभी लोगो ने एक साथ उपवास भग किया। उपवास के दिनों में सभी लोग शुद्ध जल में खूब स्नान करते थे। प्रातः काल कई-कई मील की वाकिंग होती और फिर यूनीवर्सिटी में बराबर शिजा का कार्यक्रम पूरा होता था।

आरंभ में दस-तीन दिनों तक कुछ लोगों को कुछ हुआ। परन्तु एक नहीं मन्थ्या में लागू उपवास कर रहे थे, इन लिए लोगों ने सहाय किया। उन उपवास-काल की जा रिपोर्ट प्रकाशित की गयी, उसमें बताया गया कि उपवास के दिनों में सर्भों लागू करने इतना अधिक प्रसन्न गठे नितने कि पदल कभी न रहते थे और सप्ताह के अंत तक किसी भी अधिक कमचारा को अनुभव नहीं किया।

इसका पर यह कहा जानना है कि क्या उपवास करने से निरलता नडा आती ता फिर भाङ्ग करने की जरूरत ही क्या है? सदा के लिए ही भोजन क्यों न छाड़ दिया जाय? चास्तव में ऐसा करना अन्याय करना है। जिस घोक खाने से मनुष्य में शक्ति आता है, उतका थावा छटाँक, एक छटाँक खाने के पचाय, मनुष्य एक मन, दो मन घी एक दिन में खाकर शक्ति क्या नहीं पैदा कर जाता। निम्न व्यायाम के द्वारा शरीर को बनाया जाता है, उस व्यायाम को घण्टे आध घण्टे के स्थान पर चौबीस घण्टे व्यायाम करके शरीर को एक साथ ही क्यों नहीं बना लिया जाता? अस्तु, इस प्रकार के प्रश्न और उत्तर, दोनों ही अनावश्यक हैं।

उपवास-काल में मानसिक श्रम

जब शारीरिक श्रम में उपवास से कोई बाधा नहीं पड़ती तो मानसिक श्रम के लिए उपवास काल बाधक नहीं हो सकता। कुछ विद्वानों का कहना है कि उपवास का प्रभाव मानसिक

शक्तियाँ परवही पाना जा समाप्त होते । आग तपाने पर पैदा होता है । मानव में यह बात प्रकृतिक नियम है । मानव आग में तपकर प्रकाश प्रकाशित होता है । मानविक आग प्रयोग उपवास-काल में शुद्ध और निरंतर रहता है । मानव आग तपाने में उपवास के प्रयोग करते रहता है । मानविक आग तपाने में मानविक परिवर्तन के साथ नहीं बदलता रहता । पालक आग तपाने, उपवास काल में भी मानविक रहता है ।

एक प्राकृतिक चिकित्सक का कहना है कि किसी भी विषय में मानविक शक्तियाँ ही तन्मयता उपवास-काल में निरंतर प्रकाशित करती हैं उस प्रकार भोजन के विना मन रहता । जिससे इन बातों का निष्कर्ष है वह प्रमाणात्मक आग तपाने का अर्थ है और अपने अनेक प्रकार के प्रमाणों के द्वारा उनका इन बातों का सिद्ध किया है । उनका यह भी निष्कर्ष है कि इन बातों का अनुभव यही करोगे जो उपवास के महत्व और फायदे को जानते हैं ।

अमेरिकी में एक पुस्तक है—*फास्टिंग क्यूर (Fasting Cure)* उनके लेखक ने बताया है कि मानविक विज्ञान के लिए उपवास से अधिक उपयोगी दूसरा कोई माध्यम नहीं हो सकता । इसीलिए समार के प्रसिद्ध पुस्तक और प्रतिभाशाली आत्मज्ञान उपवास के पक्ष में पाये जाते हैं । कदाचिन् ही कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति मिले जिसने उपवास के प्रयोगों से प्रकृतिक रूप से मानविक शक्ति का अर्जन किया हो ।”

जब इस प्रकार की घातों का तत्वावधान किया जाता है, तब इन घातों की सार्थकता स्पष्ट रूप में प्रकट होती है और बिना किसी भेद-भाव के इस घात को स्वीकार करना पड़ता है कि मानसिक विकास के लिए इन प्रयोगों की अत्यन्त आवश्यकता है।

जब इस प्रकार प
इन बातों की सार्थकता
किसी भेद-भाव के
है कि मानसिक वि
आवरणयुक्त है।

के प्रयोग
क शान व हास, तब यह इस
का सहता।
उठाना चाहें उनका व (१५)
मिथ मरु, पदों और परिष्कार,
विद्याना स गिनकर लान गये
की उपवास के प्रयोग कि उप
और बोली-स्ता भी प्र
। मगरी व २ मगरी
की उपवास ३ मगरी
शुद्धता विधि तक
दिना गये
है। १५५

हैं। जब तक उनका ठीक-ठीक ज्ञान न होगा, तब तक उनमें अधिक लाभ नहीं उठाया जा सकता।

उपवास में चा लोग लाभ उठाना चाहें उनको चाहिए कि इस प्रकार का साहित्य जितना मिला सके, पढ़ें। और यदि सम्भव हो सके तो उपवास के अनुभवी विद्वानों से मिलकर लाभ उठावें। यादा-ना मुत्तर और जानकर यदि उपवास के प्रयोग किये जायें तो सम्भव है कि आगे चलकर और थोड़ी-सी भी प्रतिकूल अवस्था आने पर उससे निश्चय हट जाय। यद्यपि छोटे उपवासों से कितना प्रकार की हानि नहीं होती, फिर भी उपवास का प्रारम्भ और अंत निगमानुसार ही होना चाहिए। इसका उचित लाभ इसी दशा में हो सकता है। किन्तु जब लम्बे उपवास किये जाते हैं तो उनमें अधिक साधनों की आवश्यकता होती है। इसका अधिक विस्तार अगले पन्नों में किया जायगा।

उपवास किस लिए करना चाहिए ?

उपवास प्रारम्भ करने के पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि उपवास किस प्रकार किया जाता है और हम जो करने जा रहे हैं, किस लिए करने जा रहे हैं ?

उपवास के सम्बन्ध में अब तक सभी प्रकार की बातें बतायी गयी हैं। उन सबको पढ़कर पहले अपनी आवश्यकता का निश्चय करना चाहिए और उसका निश्चय हो जाने के बाद उपवास की तैयारी करना चाहिए। हमारा यह पूर्ण विश्वास है कि उपवास

अत्यन्त लाभकारी शरीर के लिए एक क्रिया है जिसे के द्वारा सभी प्रकार के लोग लाभ उठा सकते हैं।

शारीरिक और मानसिक भिन्न-भिन्न प्रकार की बातों पर उपवास अपना प्रभाव डालता है। यह भा हम ऊपर बता चुके हैं कि उपवास के द्वारा रोगों का निराकरण, उपवास का एक माध्यम काय है। किन्तु इससे द्वारा शारीरिक और मानसिक रोगों का सशोषण और उत्तम उमरी महत्त्वपूर्ण प्राप्ति है। ऐसी दशा में उपवास के मन्थन में सभा का प्राप्ति के एक-सी नहीं हैं ऐसी दशा में उमरी काय-प्रणाली भा अन्त अंशों में विभिन्न हो सकती है।

किसको उपवास करना चाहिए ?

उपवास एक ऐसी क्रिया है जो अच्छा से लेकर बड़ा तक, सबके लिए लाभकर सिद्ध होती है। फिर भी उपवास देने वाले का यह माय है कि जिसको उपवास दिया जाय, उमरी आयु-कता और अवस्था पर विचार कर लिया जाय। इतना विचार करने के बाद ही उपवास देने वाला सावधान रहता है कि किस प्रकार का उपवास देने की आवश्यकता है। उपवास ता कोई भी ले सकता है किन्तु भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में, विभिन्न प्रकार के उपवास दिये जाते हैं। जो लोग इस बात का विचार न करेंगे, वे सहसा हानि उठावेंगे।

निम्नलिखित प्रतिबन्धों के अनुसार उपवास की प्रवृत्ति-अलग व्यवस्थाओं की जाननी चाहिए—

- १—बच्चा के लिए उपवास ।
- २—सयाने लडकों के लिए उपवास ।
- ३—स्त्रियों के लिए उपवास ।
- ४—स्वस्थ आदमी के लिए उपवास ।
- ५—बूढ़े और निर्बल आदमियों के लिए उपवास ।
- ६—साधारण रोगों और सक्रामक रोगों में उपवास ।
- ७—अत्यधिक निर्बल रोगी के लिए उपवास ।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न अवस्था के मनुष्यों में उपवास विभिन्न रूप में व्यवस्थायें काम करती हैं—

१—छोटे-से छोटे बच्चा को भी उपवास दिये जाते हैं। या तब कि एक-एक वर्ष के बच्चे को भी एक-एक सप्ताह का उपवास दिया गया है और उससे बराबर लाभ हुआ है। परन्तु उपवास के दिनों का निश्चय प्रत्येक बालक के साथ एक समान नहीं किया जा सकता।

छोटे बच्चों में जो उपवास दिये जाते हैं, वे रोग-निवारण के लिए ही दिये जाते। जो रोग जेसा होता है, वैसा ही वह उपवास चाहता है। साधारण कष्ट में एक दिन का, दो दिन का उपवास हो परियाप्त होता है जैसे, साधारण ज्वर, कब्ज, पेट पीडा आदि। किन्तु यही रोग यदि कुछ अरसे से होते हैं तो फिर उपवास के समय की मात्रा बढ़ा देनी पडती है और यदि छोटे बच्चा में कोई दीर्घ कालीन रोग होता है तो वह रोग बिना लम्बे उपावस के नहा दूर होता। अज्ञानता वश माता-पिता समझा करते हैं कि

छूटे पच्चे दिना खाये पिये नहीं रह सकते, परन्तु उनका यह कैवल भ्रम हाता है। लम्बा उपवास देने के पूर्व किसी अनुभवी से सम्मति ललना अथवा उसक सरक्षण म उपवास दना अधिक आवश्यक होता है।

२—सगने उगा के लिए उपवास देने म विशेष चिन्ता की आवत नहीं हाती। परन्तु उनकी भा अयस्था और रोग की दशा का देख कर ही उपवास देने की व्यवस्था करनी चाहिए।

३—स्त्रियाँ स्वभावत मुकुमार होती हँ। इस लिए पुरुषों की अपेक्षा कठोरता कम सहन कर सकती हँ। विशेषकर जत्र वे गभवती होती हँ, उन दिनों म बहुत सम्भाल कर उपवास देने की व्यवस्था की जाती है।

४—धर्म और तन्दुरुस्त आदमी महज ही उपवास कर सकते हँ। उपवास से कभी हानि नहीं होती, किन्तु पुराने रागों में अथवा असाध्य व्याधियों मे लम्बे उपवास की आवश्यकता पडती है।

५—बूढे और निर्मल आदमियों को भी उपवास दिये जाते हँ। परन्तु इस बात का स्मरण रखा जाता है कि उनके शरीर की शक्तियाँ क्षणता पर होता हँ। विशेषकर जत्र बूढे आत्मियों को कोई जर्ण बीमारो लग जाती है तो उनकी दशा को देखकर उपवास की व्यवस्था करनी पडतो है।

६—उपवास की व्यवस्था रोगों की अवस्था पर निर्भर है। साधारण रोग दे-दो चार-चार दिनों के ही उपवास से ठीक हो

१६—छोटे और बड़े उपवास

हम पीने वाले पशुओं से लेकर बूढ़ों तक—सबको उपवास दिये जा सकते हैं और आवश्यकतानुसार उनसे लाभ उठा जा सकता है। परन्तु सब का एक समान उपवास नहीं दिया जा सकता। ऐसा कि पिछले पृष्ठा में लिखा गया है, शारीरिक शक्ति अथवा और रोग की आवश्यकता को देखकर उपवास का निश्चय करना चाहिए।

यद्यपि सभी जानते हैं कि उपयोगी रो-उपयोगी वस्तु भी, अनुचित प्रयोग करने से हानिकार हो जाती है। कुछ पदार्थ हमारे लिए अमृतमय हैं, परन्तु यदि उनको व्यवहार में लाने का रास्ता गलत है तो वे हमारे लिए अमृत न रहेंगे और यह भी निश्चय है कि उनका गुण विपरीत हो जायगा।

उपवास के सम्बन्ध में भी यही बात है। उपवास बहुत अच्छी चीज है। उससे सभी प्रकार के लाभ उठाये जा सकते हैं, लेकिन यदि उसके प्रयोग गलत किये जायेंगे और अनवश्यक उसका व्यवहार होगा तो निश्चित उससे हानि होसकती है। या तो उपवास के प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक और सरल हैं, तबको कोई भी आदमी व्यवहार में लासकता है। उसकी व्यावहारिकता इतनी स्वाभाविक है कि उससे पशु-पक्षी और जानवर लाभ उठाने हैं।

उपवास का सम्बन्ध हमारी प्रकृति के साथ है । यदि हम अपनी प्रकृति का अनुसरण नहीं करते तो भी हम भूल जाते हैं कि हमारे अन्दर भी प्रकृति का अनुसरण करना ही हमारा धर्म है । यदि हम अपनी प्रकृति से अलग हो जाते हैं तो हमारे अन्दर भी प्रकृति से अलग हो जाते हैं । जहाँ पर मनुष्य प्रकृति के प्रति उपेक्षा का व्यवहार करता है और अपनी समझ से काम लेता है, ऐसी प्रकृति में क्षति स्वाभाविक है ।

किस प्रकार का उपवास दिया जाय ?

आवश्यकता के अनुसार उपवास की व्यवस्था की जाती है । यदि आपको इन बातों का ज्ञान हो, तो इनका विवेचन कर सकते हैं । यदि जो अधिक जानकारी नहीं रखते, उनको चाहिए कि किसी विशेषज्ञ से सहायता लें । उपवासों की व्यवस्था अनेक रूप में होती है—

- (१) सरल उपवास ।
- (२) छोटा उपवास ।
- (३) कड़ा उपवास ।
- (४) लम्बा उपवास ।
- (५) अर्द्धउपवास ।

सामूली दशा में सरल उपवास किये जाते हैं, जिनमें एक-दो दिन को गाना रोक दिया जाता है अथवा साधारण फल या पानी का रस दिया जाता है । इतने ही से साधारण अवस्था में लाभ हाजिरा है ।

छोटे उपवासों में तीन दिन, चार दिन, छह दिन के उपवासों को माना जाता है। एक सप्ताह तक का उपवास, छोटा उपवास कहलाता है। रोग की दशा और शारीरिक अवस्था से उपवास के दिनों का सम्बन्ध है।

कड़े उपवास में, उपवास-सम्बन्धी अनेक नियमों से काय रक्षित किया जाता है और इसलिए कि यदि उनमें कठोरता का व्यवहार नहीं किया जाय तो कठिन अथवा असाध्य रोगों में जल्दी काय प्रभाव नहीं पड़ता।

लम्बे उपवास पुराने रोगों में किये जाते हैं। इनके लिए किसी सख्ती का निश्चय नहीं है। यह छप्पने से ऊपर, दस दिन पन्द्रह दिन, तीस दिन, पच्चीस दिन, तीस दिन और चालीस दिन तक के उपवास भी किये जाते हैं। यही नहीं, इससे भी अधिक दिनों तक के उपवास करने वाले आदमी देखे गये हैं और उन्होंने इस दीर्घकालीन उपवास के द्वारा पूर्णरूप से लाभ उठाया है।

मामूली शिवायतों में अर्द्धोपवास किये जाते हैं। अर्द्धोपवास में चौपास घण्टे में एक बार खाना दिया जाता है और वह भात अत्यन्त प्राकृतिक और पाच्य। कभी-कभी एक बार या दो बार फलों का रस ही दिया जाता है।

किस प्रकार के उपवास में क्या-क्या व्यवस्था की जाती है, इसका विस्तार अलग अलग आगामी उपवास के पत्र में किया जायगा। यहाँ पर केवल उपवास करने वालों का ध्यान आकर्षित किया जाता है जिसके अनुसार उपवास करनेवाला को इस

वात का ज्ञान होगा कि उपवास आवश्यकता के अन्तर्गत न किये जाय।

उपवास कितने दिनों का दिया जा सकता है ?

या तो इसके समझने और समझाने में कुछ कठिनाई ही मालूम पड़ती है कि उपवास कितने दिनों तक दिया जाय और किस प्रकार इसका निश्चय किया जाय। मन से गहरी जान यह है कि सभी मनुष्य परापर उपवास नहीं कर सकते और यह भी नहीं होता कि किसी मनुष्य में उपवास करने की शक्ति हाथी हो।

उपवास यहाँ तक किया जा सकता है जहाँ तक उसकी आवश्यकता होती है और आवश्यकता का सम्बन्ध शरीर के भीतर संचित मल और विचार से है। यदि यह मल और विचार शरीर में नहीं है तो तीन दिनों का उपवास भी बहुत कठिन हो जाता है और यदि शरीर में मल का संचय है तो सरलता पूर्वक दस दिन, तीस दिन, पन्चीस दिन आदि इससे भी अधिक उपवास किये जा सकते हैं।

उपवास के सम्बन्ध में विद्वानों ने अनेक प्रकार की बातें कही हैं। डाक्टर मैकफेडन ने इस मर्के के लिए बताया है कि 'यदि एक स्वाभाविक भूख जाग्रत न हो, तब तक उपवास को आरम्भ न चाहिए। उपवास की शक्ति के निश्चय करने का यही एक मार्ग है और इससे अधिक उपवास करना भी न चाहिए नहीं ता उससे शरीर को क्षति पहुँचती है।'

डाक्टर मैकफेडन के कथनानुसार यह प्रश्न पैदा होता है कि साधारण आदमी को किस प्रकार इस बात का ज्ञान हा कि स्वाभाविक भूख के पैदा होने के लक्षण क्या हैं ? होता यह है कि रोगी और विकारपूर्ण दशा में भी आदमी भूख के मारे चिल्लाया करता है फिर इसकी स्वाभाविकता और अस्वाभाविकता का पता कैसे चलाया जाय ?

उपवास चिकित्सा के विद्वान मि० हरमटे शेल्टन ने लिखा है—मैंने बहुत बड़ी संख्या में उपवास किये हैं और लम्बे उपवास में उन्चास दिन तक का उपवास किया है। परन्तु मैंने किसी प्रकार की क्षति का अनुभव नहीं किया और न मुझे अपने मि. के द्वारा ही इस बात का कुछ अनुभव हुआ। शरीर के विशुद्ध हो जाने पर प्रसन्नता पूर्वक उपवास को भंग किया है और अत्यन्त स्वाभाविक रूप से उपवास के पश्चात् कुछ दिन वाटे हैं।

डा० डीवे का कहना है कि शरीर विज्ञान के अनुसार भूख रहकर मृत्यु पाना कठिन नहीं, असम्भव है। अपनी ओर से कोई भी आदमी भूखा नहीं रह सकता। भूख और चाँद है उपवास और चाँद है। भूख के कारण प्राण-शक्ति का ह्रास होता है और उपवास के द्वारा प्राण-शक्ति को जीवन प्राप्त होता है। जो लोग भूख और उपवास को एक ही समझते हैं, वे बर्बाद भूल करत हैं।

इस प्रकार जितने ही बड़े बड़े विद्वानों की सम्मतियों का अनुशीलन किया जाता है। उतना ही इस समस्या का स्पष्टीकरण

होता है और सभी की बातों का यह साराग निकलता है कि उपवास शरीर से मल और विचार के निकालने का कार्य करत है। जब तक मल और विचार पूर्णरूप से निकल नहीं जाते तब तक चुधा स्वभावतः बन्द हो जाती है। इसी दशा में उपवास किया जा सकता है। यदि स्वाभाविक रूप से भूख रुकी हुई न हो तो महीनों के लम्बे उपवासों की बात तो दूर, चार पाँच दिनों तक भूखे रहना भी कठिन हो जाता है। इसका अर्थ यह होता है कि सरलतापूर्वक भूख वहीं रोकी जा सकती है, जहाँ शरीर विचारपूर्ण होता है। अब सारांश यह निकलता है कि जो मनुष्य स्वाभाविक रूप से जितने दिनों का उपवास कर सके, उतने दिनों का उसे करना चाहिए। उपवास के दिनों की यही एक तैल हो सकती है। शरीर के निर्णिकार होते ही स्वाभाविक भूख पदा होती है और उसके पैदा होते ही उपवास भग कर देना चाहिए।

परन्तु इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि उपवास आरम्भ करके भूख की प्रतीक्षा करना और उसी के आधार पर उपवास तोड़ देना, बुद्धिमानी की बात न होगी। यद्यपि कभी आवश्यकता पडने पर ऐसा किया जा सकता है, पर तु प्रत्येक उपवास का यह नियम न होना चाहिए। एक अनुभवी को पहले से ही इस बात को निश्चय कर लेना चाहिए कि किस आदमी को कितने दिनों का और किस प्रकार का उपवास दिया जा सकता है। उसी निश्चय के अनुसार प्रसन्नता पूर्वक उपवास भी कदापि पूरी करनी चाहिए।

सच्ची और झूठी भूख की पहचान

वास्तव में सच्ची और झूठी भूख की पहचान बताना यदि असम्भव नहीं तो कुछ कठिन अरुण है। परन्तु जो इसके अनुभव करने का अभ्यास करेगा, उसको सरलता पूर्वक इसका ज्ञान हो सकता है। उपवास के सम्बन्ध में बड़े-से-बड़े विद्वानों के लक्षों को पढ़ने से इतना ही मालूम होना है कि शरीर के निर्विकार हो जाने और नष्ट हुई लुगा के फिर उत्पन्न हो जाने तक उपवास की श्रवण होनी चाहिए। परन्तु हमारी समझ में जाग्रत होने वाली लुगा का कुछ स्पष्ट विवरण आवश्यक मालूम होता है।

यह बात ठीक है कि मन के सत्य होने अथवा रोग उत्पन्न होने पर स्वाभाविक लुगा नष्ट हो जाती है। किन्तु इस दशा में भी मनुष्य जिस भाव को अनुभव करता है, वह झूठी भूख होती है। इस सच्ची और झूठी भूख की विवेचना क्या है, इसको संक्षेप में यहाँ कुछ बताने की हम चेष्टा करेंगे।

मनुष्य खाने-पीने का ऐसा आदी होगया है कि भूख हो या न हो, भोजन करने का समय आने पर अपने आप भूख का अनुभव होने लगता है। इसका कारण मनुष्य की आत्मा है। मान लिया जाय कि दोपहर को एक आदमी ने जो खाना खाया है उसका पाचन-कार्य ठीक-ठीक नहीं हुआ, फिर भी वह सायंकाल भोजन के समय भोजन करने जाता है। इसलिए नहीं कि उसको भूख लगी है, बल्कि इसलिए कि भोजन का समय

आने पर भोजन कर लेना वह अपना एक कार्य समझता है ।
इसको भूख भूख कहते हैं ।

भूख और चीज है, आदत और चीज है, प्रायः यह हाता है कि भोजन का समय आने के पूर्व, कभी कभी घण्टा पहल हम जानते हैं कि हमारे पेट में कुछ नहीं है । भूख का आवरणकता अनुभव हाता है, किन्तु भोजन का समय न आता क कारण वसका अधिक ख्याल नहीं होता और आसानी क कारण घण्टा समय कट जाता है । इससे भी मालूम हाता है कि भूख भी अपना भोजन करने के समय का प्रभाव हमारे ऊपर अधिक पडता है । हम पर यह भी कहा जासकता है कि हम लोग जो भोजन करते हैं, वह भूख के लिए ता हम हाता है किन्तु भोजन करने क समय का पात्रणों के लिए अधिक हाता है ।

जबला भूख और नरली भूख का अनुभव क कारण समझा जासकता है । जिस प्रकार शरीर में पात्रण उपलब्ध हाता है, वसका वसायट से और दृमरी रोग से । पात्रण नशामा मी वस हाता है । वसायट नो पाडा कुछ और हाता है प्रार पीमासी को प्रार । पोडा जाता कडलानी है । मनुष्य क ता पात्रण ता मी वस आसानी के साथ समझता है । अमता मी वस पीमासी मी वस मी वस इसा प्रकार का अन्तर है, किन्तु मनुष्य चण्य करने पर अनुभव कर सकता है । मी वस समझता पूवक राका जासकती है, किन्तु मी वस मी वस मी वस राका जासकती ।

भूख और उपवास की आवश्यकता को समझने में सहन ही लोगों से भूल हो सकती है। इसका यही कारण है कि मतुप खाने-पीने का बहुत बुरी तरह से अभ्यासी होगया है। जीवित रहने के लिए भोजन किया जाता है परन्तु ऐसे आदमियों की संख्या अधिक है जो भोजन के लिए जीवित रहना चाहते हैं। भोजन भूख के लिए होता है, भोजन के लिए भूख नहीं होती।



उपवास-काल में कभी विरुद्ध लक्षण हा पैदा हो सकते हैं, ज-
सक कि स्वाभाविकता के विरुद्ध न चला जाय अथवा अधिकव-
न की जाय ।

नाड़ी की गति

मनुष्य के शरीर का ज्ञान साधारण तार से नाडी के द्वारा
होता है । नाडी की स्वाभाविक गति नोरोग शरीर का परिचय
देती है । न तो उसका मद् होना अच्छ है और न तीव्र होना ।
नाड़ी की मन्दता, निरलता के कारण पैदा होती है और उसकी
तीव्रता रोगों के कारण । उपवास के दिनों में नाडी की गति में
कई प्रकार के अन्तर हुआ करते हैं । कभी कभी उसकी चाल
बहुत धीमी होजाती है और कभी तेज होजाती है ।

बड़े उपवासा में निरलता का पैदा हाना स्वाभाविक है ।
निरलता के कारण नाडी की गति धीमी होजाती है । कभी-कभी
यह भी देखा जाता है कि मन की कमचोरी का प्रभाव नाडी की
गति में पडता है । किसी-किसी मनुष्य का मन बहुत निरल
होता है । उपवास आरभ करत ही घबराहट पैदा होती है और
दो-चार दिनों में ही भय बढ जाता है । इस भय को मानसिक
निरलता के कारण उह अधिक अनुभव करता है । इसका फल
यह हाना है कि शारीरिक निरलता अधिक न पैदा हाने पर भी
नाडी की गति बहुत मद् होजाती है । ऐसी दशा में रोगी को
सताप देने की आवश्यकता हाती है । किन्तु यदि लम्बे उपवास में
वास्तविक निरलता पैदा होरही हो तो उह दशा उपेक्षणीय नहीं हाती ।

इस बात को समझ लेना चाहिए कि यदि रास्तर में निर्वलता बढ़ रही है तो यह निश्चय है कि उपवास अपना काम समाप्त कर चुके हैं। इसलिए सोच विचार कर सावधानी के साथ उपवास तोड़ने के बाद का कार्यक्रम पूरा करना चाहिए।

निर्वलता का कारण

साधारण लाग समझते हैं कि जब इतने अधिक दिना तक हम खायेंगे नहीं तो फिर जीवित कैसे रहेंगे। उनका यह साचना उनके लिए स्वाभाविक है। ऐसी दशा में ऐसे व्यक्तियों का समझ लेना चाहिए कि विकारपूर्ण शरीर में अथवा रोगी दशा में मनुष्य जो कुल्ल खाता है, उससे उसके शरीर को कुल्ल लाभ नहीं पहुँचता, बल्कि इसके विरुद्ध शरीर में मल की वृद्धि होती है और रोग की आयु बढ़ती है। जब तक शरीर में उत्पन्न मल निर्वल न जायगा, तब तक उसके शरीर के लिए भाजन की आवश्यकता नहीं है। इसलिए प्रकृत की ओर से भाजन माँगने वाला भूख नष्ट हो गयी है।

फिर भी निर्वलता का अनुभव होना स्वाभाविक है। परन्तु इस बात पर विश्वास रखना चाहिए कि यह अनुभव बहुत अशो में भूठा हुआ करता है। उपवास के दिनों में भाजन का कार्य तो बंद रहता है, इसलिए जो मल एकत्रित रहता है, जठराग्नि के द्वारा उसके पचने का कार्य आरम्भ हो जाता है और सचित मल धीरे-धीरे निकलने लगता है। इन दिनों में एक प्रकार की अस्वा-

भाविकता-सी पैदा होती है और जो अस्वाभाविकता पैदा होती है वह हमारे अभ्यासी जीवन का परिणाम स्वरूप है।

कारण यह है कि मनुष्य नित्य भोजन करने का अभ्यासी हो गया है। इसलिए जब इस अभ्यास के विरुद्ध चलना पड़ता है तो सहज ही उसे अस्वाभाविकता मालूम होती है। किंतु यदि मनुष्य को उम्र यातना का ज्ञान होता है कि उपवास क्या है और उसके द्वारा हमारे शरीर में किस प्रकार का रचना कार्य होता है तो उसको अस्वाभाविकता के स्थान पर प्रसन्नता का अनुभव होता है।

लम्बे उपवास में, उपवास की आवश्यकतानुसार स्वाभाविक निर्मलता न पैदा होनी चाहिए। फिर भी जो दुर्बलता मालूम होती है उसका कारण यह है कि शरीर में अपवित्र रक्त और मांस जो धन जाता है, उपवास के दिनों में वह भी पचने लगता है और बराबर पचा करता है। इस प्रकार जो रक्त और मांस शरीर के लिए उपयोगी नहीं होता, वह भी क्षीण होने लगता है। उसके क्षीण होने के कारण मनुष्य देखने-सुनने में दुर्बल मालूम होने लगता है। यद्यपि यह दुर्बलता वास्तविक दुर्बलता नहीं होती। परन्तु बहुत अशांति में इस प्रकार उत्पन्न हुई क्षीणता को ही लोग दुर्बलता समझने लगते हैं और घबराने लगते हैं। ऐसी दशा में यदि मनुष्य उसके समझने की चेष्टा करे तो उसको सच्ची जानकारी पैदा तो सकती है और उससे घबराहट भी दूर हो सकती है।

शरीर में उत्पाप और पीडा

उपवास के नाप-नाप शरीर में पाए गए अम्ल के हटते होते हैं। मगाने के दिन यथागत मजबूत करने से ही अनेक अंगों में राजा हानि लगाने से रक्षा पाए जायेगी। अनेक अंगों में अनुभव करके मना में समीप ही लगाने। सुदृढ़ जोड़ों का नननने लाते हैं कि मूल्य के भार शरीर पर ही उत्र है, निरंतर जोर पाए-पेरे में पडा जाती है।

लेकिन ऐसा मान नहीं जाता मूल्य के भार शरीर में गमी नहीं आई और न उनके कारण पीडा ही पच हुई। कारण यह है कि तब भाजन रोक दिया जाता है अर्थात् लठरागि में पचने के लिए भाजन नहीं पहुँचना तो एफ्रित मल पचने लगता है अर्थात् इस प्रकार सञ्चित मल तथा फारेन मंगर के निकलने से शरीर में भीतर की गर्मी उत्पन्न आजाती है इसीके कारण शरीर उत्पाप और पाडिव होने लगता है। यदि अत्यन्त पाप अथवा अधिक होती है तो ज्वर मच छूट जाता है तो उस दशा में परिवर्तन होने लगता है। जितना ही फारेन मीटर विस्तृत जाता है, उत उत्पाप और पीडा उतना ही कम जाती जाती है।

इसको शान्त करने के लिए शीतल पान का साधन है। आवश्यक होता है और इसके साथ साथ उम्र पार के साधन का अभ्यसन और अनुशालन गहायक होगा। जो उपवास के समय में ज्ञान और जागरूकी उत्पन्न होगी।

छोटे उपवास के बाद बड़े उपवास

ऊपर यह बात लिखी जा चुकी है कि पुराने और असल रोगों में लम्बे उपवास के बिना लाभ नहीं होता। लेकिन जिस कभी उपवास नहीं किया, उसको अस्मान् लम्बा उपवास, मन् चित् सहन न होगा अथवा अनेक प्रकार की घबराहट पै फरेगा। इसलिए यह आवश्यक होना है कि लम्बा उपवास के पहले, एक, दो या तीन छोटे उपवास दिये जायें। ऐसा करने से रोगी निर्बिकार तो न होजायगा, किन्तु लम्बा उपवास करने की शक्ति और साहस पैदा होजायगा इसके उपरान्त लम्बे उपवास लिया जाना चाहिए और दिया जाना चाहिए आवश्यकता को देखकर।

कभी-कभी लोग ऐसा करते हैं कि किसी असाध्य रोगी को, लम्बा उपवास दे देते हैं और यदि वह, उनके लिए अभ्यासी नहा है, अथवा उसके लिए उपवास बिल्कुल नई चीज है तो कुछ ही आगे चलकर रागी घबराने लगता है और किसी-न किसी तरह उपवास को भग करने की चेष्टा करता है।

अनिद्रा और अशान्ति

उपवास-काल में अनिद्रा और अशान्ति उत्पन्न होती है, नींद न आने के कारण उपवास करने वालों को एक नया कष्ट भेलना पड़ता है। इस लिए भी कुछ घबराहट पैदा हो जाती है।

यद्यपि नाट्य व आने पर किसी प्रकार की घबराहट न हानी चाहिए किन्तु मनुष्य अपनी अनेक बातों में एसा अभ्यासी हा गया है कि उसकी आर्यरकता हा या न हा मनुष्य उसकी आर्यरकता का अनुभव करता है। नाट्य के लिए भा यही बात है। हम उपर बात चुके है कि भाजन व करण क कारण एरु अस्वाभाविकता-को मान्य हाती है। यद अस्वाभाविकता ही, शरीर के लिए असान्ति हा जाता है। किता भा प्रकार की असान्ति में नाट्य का न आता स्वाभाविक है।

एक बात आर जाती है। उपवास-काल में लाग परिश्रम नहीं करते। कुछ लाग ता परिश्रम इस लिए नहीं करते कि उनको शरीर में निर्यलता का अनुभव हाता है। और कुछ लोग तो सिद्धान्त रूप में ही परिश्रम नहा करते। उनका कहना यह है कि उपवास-काल में या ही शक्ति का हानि होने लगता है इमीलिए जो शक्ति शरीर में शेष रह जाय, उसका उपयोग मल निकालने के काम में ही अधिक होना चाहिए।

परन्तु हम उमके पक्ष में नहा है। और जहाँ तक उपवास के समय में विद्वाना क विचार पढने और जानने को मिल है, उनसे मालूम होता कि उपवास-काल में बराबर परिश्रम और व्यायाम करना चाहिए। इससे शरीर को हानि के बजाय, लाभ ही होता है। हाँ, तो यहाँ पर यह समझ लेना चाहिए कि जो लोग व्यायाम अथवा किसी अन्य प्रकार का परिश्रम उपवास काल में

नहीं करते, उनमें अनिद्रा का कष्ट अधिक होता है। क्योंकि नींद तो शरीर की इन्द्रियों के शैथिल्य में आती है।

अनिद्रा और अशान्ति के निवारण के लिए शीतल जल पीने का काम अधिक करना चाहिए और शान्ति समग्र हो सकने के लिए सोने से पूर्व स्नान कर लिया जाय। यदि ठंडे दिन हों और जाड़ा पड़ रहा हो तो बड़ कमरे में, गर्म पानी से नहाया जा सकता है। ऐसा करने से नींद आ जायगी और कोई कष्ट न होगा।

उपवास के दिनों में शीतल जल पीने का काम आवश्यक होना चाहिए, इससे कई लाभ होते हैं, एक तो उपवास करने से जाड़ा गर्मी बढ़ती है, उसमें शान्ति पहुँचती है और पेट में अवस्थित मल धुनकर, आसानी के साथ शरीर से बाहर निकल जाता है। कुछ लोग गर्म जल पीने की सम्मति देते हैं, लेकिन हमारी सम्मति में गर्म जल की अपेक्षा, शीतल जल अधिक उपयोगी है और उपयोगी है प्रत्येक ऋतु में, चाहे जाड़ा हो चाहे गर्मी। शीतल जल शरीर पीना चाहिए, उपवास के दिनों में तो एक-एक घंटे पर जल पीने में भूल न करनी चाहिए।

१८--उपवास के साथ अन्य प्रयोग

शरीर और मन को निर्दिष्ट तंत्रों द्वारा तैयार करना और उपवास के लिए उपवास के प्रयोग किए जाते हैं। इन प्रयोगों के साथ-साथ अन्य प्रयोग भी सम्मिलित हैं। इनके सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ बातें बतलाना हैं।

किसी भी औषधि के साथ अनुपान का उपयोग होता है। आयुर्वेदिक और यूनानी औषधियों में तो रास तौर पर अनुपान का उपयोग किया जाता है। अंग्रेजी दवाओं में इतना तो नहीं मिलता फिर भी अनुपान का प्रयोग होता है। जो चीजें अनुपान दी जाती हैं, उनसे औषधियों का प्रभाव अधिक हो जाता है।

उपवास के सम्बन्ध में भी हमारी इसी प्रकार की धारणा है। अन्य जो प्रयोग उपवास के प्रयोगों की न केवल साधारण सहायता करते हैं, किन्तु इन्हें शीघ्र-से शीघ्र सफल बनाते हैं। हमारे अनेक उपाय भी सफल हैं और उनके उपयोग से लाभ उठाना हमारा कर्तव्य है।

जल के प्रयोग

या तो जल के प्रयोग अथवा जल चिकित्सा शरीर को आरोग्य करने के लिए स्वतंत्र रूप में काम करती है, किन्तु यहाँ पर हम उसके उतने ही अंश का उपयोग करेंगे, जितना उपवास के साथ आवश्यक है।

हमारे शरीर के लिए जल एक महत्वपूर्ण पदार्थ है । इसमें प्राण-शक्ति देने का गुण है और साथ ही नरोग बनाने के लिए उसका चमत्कार प्रसिद्ध है । यों तो जल के प्रयोग जीवन भर हमारे लिए आवश्यक हैं, परन्तु उपवास-काल में विशेष रूप से उसका उपयोग की आवश्यकता है । निम्नलिखित बातों में जल के प्रयोग से लाभ उठाना चाहिए—

१—शीतल जल के पीने का प्रयोग ।

२—ठण्डे जल में नहाने का प्रयोग ।

३—हिप-बाथ या कटि-स्नान का प्रयोग ।

उपरोक्त तीन तरीकों से जल का प्रयोग हमें करना चाहिए । इन प्रयोगों का विस्तार इस प्रकार है—

१—उपवास के दिनों में अधिक पानी पीने की कोशिश करनी चाहिए । उसका कोई परिमाण नहीं है । और कम पीने से हानि हो सकती है, किन्तु अधिक पीने से हानि नहीं हो सकती । ठण्डे दिनों में भी, जब प्यास नहीं लगती है, तो थोड़ी थोड़ी देर में पानी पीना चाहिए । साधारण तरीके से घण्टे में एक बार एक गिलास जल पीना आवश्यक होता है । जल, शुद्ध, शीतल और ताजा होना चाहिए । इस प्रकार का जल सदा स्वास्थ्य और सौन्दर्य की वृद्धि करता है ।

२—शीतल जल में स्नान करना बहुत ही लाभकारी है । लोगों में गर्म पानी में स्नान करने की एक मनोवृत्ति पायी जाती है जो यदि हानिकारक नहीं है तो अधिक लाभकर भी नहीं है ।

गर्भ में लेटर सरदी तर—रिस्सी ना पोसम में शीतल जल का स्नान आरोग्य देना वाजा होता है। प्रिय निचल रागिया को छाड़कर, दुग्मुह बच्चा स लहर—दूगें वक का रातल जल में नितर स्नान करना चाहिण। गदा। व लिण यदि गदना दुइ नदी का सन्द्र जल मिल सक ता प्रार ना गच्छा है।

२—डिप राम अरया रटि-म्ना। वना। कररता क महत्वपूर्ण प्रयाग है। इसका नियम यह है कि टप न शाल जल भरकर पत्रगीत हाफर इव प्रहार में ठा। यदि पट का तारी में लकर चाया स नाच तर का भाग पानी न टूट जाय। इस प्रकार टप में बैठकर पुणायम रूपड़े स पेट का गारना प्रार स गार्गी प्रार का धार-धीर मलना चाहिण।

उपवास के दिना में कम-से कम एक प्रार इसका अवश्य प्रयोग करना चाहिण। पन्द्रह मिनट स लहर, आध घण्टे तक डिप-राम लिया जासकता है। यदि अधिक सरदी के दिन हों तो पन्द्रह राम मिनट ही काफी हाग।

उपवास के दिना में प्रिय कर जय अनिद्रा ओर अशान्ति की वृद्धि हाता है ओर शरीर में उत्ताप एव पीड़ा उत्पन्न होती है, न दिन में एक प्रार अवसा दो प्रार डिप-राम ले लने से बड़ी शान्ति भिताती है ओर रात में नींद आती है।

एनीमा का प्रयोग

उपवास के दिनों में एनीमा का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है। यदि एनीमा का प्रयोग न किया जाय तो भी काम चल सकता

है। किन्तु पेट में रुका हुआ और सूखा हुआ मल निकालने में एनीमा के द्वारा आसानी होती है। यदि इसका प्रयोग न किया जाय तो भी वह निकल सकता है किन्तु अधिक अरसा लगता है।

एनीमा के द्वारा गुदा मार्ग से सातुन मिश्रित गर्म जल अर्थात् डियो और पेट के दूसरे भाग में पहुँचाया जाता है। यह जल उन स्थानों में रुके हुए और सूखे हुए मल को बोंकर बाहर निकालता है। जब उपवास आरम्भ किया जाता है तो कई दिनों तक नित्य एनीमा का प्रयोग दिया जाता है। जब कुछ दिनों तक लगातार एनीमा का प्रयोग करना होता है तो फिर खाली गम जल का एनीमा दिया जाता है। पेट के भीतर का रुका हुआ मल इसके द्वारा बड़ी सरलता के साथ निकाला जाता है।

मिट्टी के प्रयोग

प्राकृतिक चिकित्सा में मिट्टी के द्वारा रोग का जो प्रतिहार होता है, उसका बड़ा महत्व है। प्राचीन काल में यद्यपि मिट्टी के प्रयोगों के समय में कोई वैज्ञानिक अनुसंधान न था, परन्तु समाज में शरीर की भिन्न भिन्न व्याधियों में मिट्टी के प्रयोगों का प्रचलन था। उस प्रचार का अस्तित्व अब भी समाज में पाया जाता है, किन्तु बहुत कम। व्याधियों के प्रचार ने मिट्टी के प्रयोगों का नाम ही मिटा दिया था, परन्तु समाज की स्वाभाविक जाग्रति ने उसके महत्व को फिर पहचाना और जिस मिट्टी के प्रयोग, असभ्य तथा अशिक्षित जातियों में पाये जाते थे, उस मिट्टी के प्रयोगों का महत्व सभ्य की शिक्षित और सभ्य जातियों

आरम्भ हुआ। आज दशा यह है कि संसार के प्रत्येक देश में जो समुदाय अधिक शिक्षित और सभ्य माना जाता है, उसमें जल, मिट्टी और उपवास के प्रयोगों का विस्तार दिन-पर-दिन बढ़ रहा है और इस बढ़ती हुई वृद्धि ने ओपविया का क्षेत्र बहुत सकुचित कर डाला है।

यों तो मिट्टी के प्रयोग सभी प्रकार के रोगों में अपना प्राश्चर्यमय प्रभाव रखते हैं परन्तु उन सबके सबध में यहाँ लेखने के लिए स्थान नहीं है। अतएव यहाँ पर मिट्टी के प्रयोगों की उतनी ही चर्चा की जायगी, जितनी एक उपवास के प्रयोगों के साथ साथ आवश्यक है।

सब से पहला यह ज्ञान लेने की आवश्यकता है कि मिट्टी में रोगों के विष का चूम लेने की शक्ति होती है। इसी आधार पर मिट्टी के सम्बन्ध में बड़े-बड़े विद्वानों ने अनेक प्रकार की खोज की है और उसके फलस्वरूप आज मिट्टी के द्वारा अनेक प्रकार के रोग निवारण किए जाते हैं।

जिस मिट्टी का प्रयोग किया जाता है वह मिट्टी एक विशेष प्रकार की होती है और स्वयं पायी जाती है। नदी-तालाब या किसी बड़े जलाशय के किनारे अथवा उसके निकट, काले या भूरे रंग की एक चिकनी मिट्टी होती है। जिसमें किसी प्रकार का कूड़ा पकट नहीं होता। उसी का प्रयोग किया जाता है। प्रयोग करने का तरीका यह है कि उस प्रकार की मिट्टी के बड़े बड़े टुकड़ों को कूटकर और महीन चलनी से छानकर रख लिया जाता

है। उसके रात मिट्टी के किसी करे वर्तन में उस छनी हुई को छोड़कर अधिक-से-अधिक ठंडा जल उममें डाल दिया है। वह वर्तन दिन को छाया में और रात को ओस में रखा जाता है। एक दिन और एक रात के बाद उस पानी में तैयार हो जाती है। इसके बाद वह मिट्टी प्रयोग में लासकती है।

मिट्टी के प्रयोग का नियम यह है कि उपवास आरम्भ करने साय-साय रात को सोने के समय उस गीली मिट्टी को पेट के ऊपर—तोंदी के आस-पास चढाते हैं। उसका नियम यह है मिट्टी को कुछ तादाद में लेकर, हाथों को गन्धेरी पर रोटी समान लगभग आवे इंच की माटाइ में बढा लते हैं और तोंदी के ऊपर इस प्रकार उसको रख लेते हैं कि जिसमें मिट्टी पेट के ऊपर पूणरूप से आजाय, उसके ऊपर एक गोला कपडा रखा है और उसके ऊपर सूखा कपडा लपेटकर, पेट में रॉय देत है। इस मिट्टी का दो-ढाई घण्टे के उपरान्त निकालकर फेंक देत है कई दिना तक ऐसा कर लेने से एकत्रित मल के विष को निकालने में बडी आसानी होती है।

इस बात को स्मरण रखना चाहिये कि एनीमा के प्रयोग से एकत्रित मल निकल जाता है किन्तु मल से उत्पन्न हुआ विष जो रक्त में मिश्रित हो जाता है, वह जल और मिट्टी के प्रयोगों से निकाला जाता है।

वायु-सेवन

उपवास के दिना में वायु-सेवन अत्यन्त आवश्यक है। प्रातः-काल का वायु-सेवन सब से अधिक लाभदायक है। मनुष्या की आमादी से दूर—मैदानों, जंगलों और प्राणीचों की वायु, सेवन के योग्य होती है। वायु सेवन में दो बातों का ध्यान रखा जाता है। एक तो यह कि न्यून और ताजी वायु अधिक-से-अधिक प्रातः का जाय और दूसरा यह कि स्वास्थ्यप्रद स्थानों में इतना अधिक चलने का प्रकार मिले कि उसके द्वारा हलका व्यायाम सा हा जाय। उपवास करने वाले को अपनी शक्ति के अनुसार प्रातः-काल और सायंकाल शीतल और ताजी वायु में चलने का काम करना चाहिए और इस उद्योग के लिए एम्-गो फर्लांग से लेकर फर्ड-फर्ड मील तक चला जा सकता है। न तो इतना अधिक कि चलने वाला को थकाने में डूबे या अनुभव हो और न इतना कम कि उससे कुछ लाभ न हो।

ऊपर लिखे हुए प्रयोग उपवास के दिना में अत्यन्त आवश्यक हैं। वायु-उपवास के साथ साथ इन सभी प्रयोगों का यथाचित उपयोग किया जाता है तो उपवास का स्थायी और मृशल्प से लाभ पहुँचता है।

१९—उपवास से किन दशाओं में लाभ नहीं होता

कि सी भी कार्य की क्रिया में जब अंतर होता है, अथवा वह कार्य नियमपूर्वक नहीं किया जाता तो उम्मा उचित लाभ नहीं मिलता, यह तो ठीक ही है। इसलिए काम करने का नियम और ढंग ठीक होना चाहिए। परन्तु इतना हाने पर भी कभी कभी सफलता नहीं मिलती। उपवास के सम्बन्ध में प्रायः ऐसा होता है कि नियमानुसार कार्य का सम्पन्न होने पर भी उससे उचित लाभ नहीं होता। ऐसी दशा में नय प्रादमी अथवा अनुभवहीन व्यक्ति उपवास के प्रति अविश्वास करने लगते हैं। ऐसी दशा में उनको यह जानने की आवश्यकता है कि उपवास से किन दशाओं में लाभ नहीं होता और यदि होता भी है तो कम होता है। इस लिए यहाँ पर इस प्रकार की बातों का कुछ बखान आवश्यक मालूम होता है।

लोगों को यह न समझ लेना चाहिए कि किसी भी रोग में, रोगी की किसी भी दशा में और किन्हीं भी क्रियाओं के द्वारा उपवास से लाभ पहुँचेगा ही। बल्कि इस बात को ठीक ठीक समझने की आवश्यकता है कि जब तक विज्ञान के अनुसार उपवास का ठीक-ठीक प्रयोग न होगा और रोगी की परिस्थितियाँ और अस्थायें अनुकूल न पड़ेगी, तब तक उपवास से उचित लाभ की आशा करना व्यर्थ है। नीचे जिन बातों

पर प्रकाश डाला जायगा, उनसे हमें ज्ञान की यथार्थता प्रकट हो जायगी।

शक्तियों का अधिक क्षय हो जाने पर

रोग के अधिक पुराने अथवा अमान्य होने पर अथवा रोगी को अधिक जलाने अथवा मजबूत उपवास के प्रयोग किए जाते हैं तो उनका जल्दा प्रभाव पड़ता है। कभी कभी तो ऐसा होता है कि उपवास करने वाले का शरीर उपवास करने वाले का—रोगी को निराशा होती है। यदि ऐसा परिणाम उपवास करने वाले को निराशा देने की आवश्यकता नहीं है। यह उचित है कि हम रोगी का दशा में उपवास का जल्दा प्रभाव न पड़ेगा। फिर भी उसके लाभ होंगे। और इसके लिए यह उचित है कि किसी अनुभवी व्यक्ति से सम्मति ले लें।

किसी भी दशा में जलाने की शक्तियों का अधिक क्षय हो जाता है तो न केवल उपवास के प्रयोग अपना प्रभाव डालने में निबल सारित होत है, बल्कि शरीर में सावधानी मालूम होता है। अन्य साधना का अपेक्षा, उपवास के प्रयोग ऐसी दशाओं में अधिक सफलता पाते हैं। परन्तु कुछ विलम्ब और सावधानी के साथ।

उपवास में जल्दवाजी

उपवास के असफल होने का कारण दूसरा यह है कि जलाने में जल्दवाजी से काम लिया जाता है। कुछ लोगों की

ऐसी मनोवृत्ति हाती है कि वह किसी भी कार्य का फल से पूर्व चाइत हें। उपवास के समय में भी वे लोग यही सोचते हैं कि उपवास प्रारंभ करते ही उमर का लाभ हा जाय। इस प्रकार तत्क्षण लाभ चाहने वाले पंडो जल्दवाजी से काम लेते हैं। दशाश्रो में उपवास उचित रूप से सफल नहीं होता। इससे फल यह होता है कि लोग अपनी भूख को नहीं समझते और उपवास पर लाञ्छन लगात हें।

उपवास क द्वारा स्वाभाविक रूप से रोगों के विप का निवारण करण क्रिया जाता है इसलिए रोगों के शमन में उपवासों द्वारा कुछ प्रिलम्ब हाता है। ऐसी दशा में जल्दवाजी से काम लेना उपवास की सामना का व्यर्थ कर देता है। कुछ लोग जल्दवाजी के इच्छानुसार लाभ की आशा पूरा नहीं कर पाते ता अविश्वासपूर्वक उपवास के नियमों में बाधायें पहुँचती हैं इस दशा में उपवास पूर्ण रूप में व्यर्थ हो जाते हैं। अतएव बहुत शान्ति और विश्वासपूर्वक उपवास के प्रयोग करने चाहिए।

विश्वास और दृढ़ता की कमी

उपवास के समय में विश्वास और दृढ़ता की बहुत आवश्यकता होती है। दृढ़ता के लिए विश्वास होना चाहिए और विश्वास होने पर ही दृढ़ता उत्पन्न होती है।

प्राय देखा जाता है कि उपवास प्रारंभ कर देने के एक, दो, तीन दिन बाद लोग अधिक घबराने लगते हैं। यदि उनको इस बात का ठीक-ठीक ज्ञान हो कि उपवास के दिनों में हमारे

को होता है, जिनको उनका ज्ञान नहीं है। ज्ञान न होने पर निर्याम और दृढ़ता नहीं पैदा हो सकती।

विश्राम का अभाव

इस ज्ञान में लोग में मतभेद है कि उपवास के दिनों में, परिश्रम करना चाहिए या नहीं। जिसके सम्बन्ध में हम पीछे कुछ बातें बता चुके हैं और ये बातें हैं, व्यायाम के सम्बन्ध में। अधिकांश लोगों की सम्मतियों पर जानतीजा निकलता है, वह व्यायाम के पक्ष में है।

इसीलिए हमने व्यायाम का उपवास के दिनों में समर्थन किया है। जो लोग व्यायाम नहीं करते, उनका विशेष रूप से व्यायाम की आवश्यकता नहीं है। नित्य के काम व्यायाम के दिनों में भी बराबर करने चाहिए। उनके सिवा व्यायाम के अभाव में वायु-सेवन अथवा वाकिंग से अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

उपवास के दिनों में निद्रा की कमी हो जाती है। कुछ लोगों को तो इसके अभाव में अधिक रुष्ट होता है। यद्यपि निद्रा का अभाव चिंताजनक बात नहीं है फिर भी यदि नींद-भर साया जासके तो अधिक अच्छा होगा। यहाँ पर यह स्मरण रखने की आवश्यकता है कि जो लोग परिश्रम अथवा व्यायाम नहीं करते, उनको विशेष रूप से उपवास के दिनों में नींद कम आती है। नींद का आना अत्यन्त स्वास्थ्यकर है। इसलिए परिश्रम और व्यायाम, दोनों इतने आवश्यक हैं कि जिससे रात को भली प्रकार नींद आसके। जो लोग न तो व्यायाम ही करते हैं और

जाती। अतएव अनुभवी आदमिया को चाहिए कि इतनी कम मात्रा में फला या रस अथवा इसा प्रकार की कोई वस्तु आरम्भ में लें, जो कि पेट में जाकर धीरे धीरे सुप्तावस्था में पड़ी हुई अतड़ियों में गति उत्पन्न करे और फिर उसकी मात्रा बहुत धीरे धीरे बढ़ाई जाय। इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि यदि लम्बे उपवास के तोड़ने पर भरपेट भोजन दे दिया जाय तो मनुष्य की मृत्यु तक हो सकती है।

किसी भी दशा में उपवास को नियमानुसार ही तोड़ना चाहिए। नहीं तो लाभ न होगा और कभी-कभी तो लाभ के स्थान पर हानि होती है।

२०—उपवास के दिनों में उपद्रव

उपवास के दिनों में अनेक प्रकार के उपद्रव पैदा होने लगते हैं। इन उपद्रवों का कारण नहीं है। जिसके शरीर में जितना अधिक विकार होता है, उतने ही अधिक उपद्रव पैदा होते हैं। वास्तव में नहीं हैं, किन्तु वे लक्षण हैं, जिनके द्वारा हमें इस बात का पता चलता है कि उपवास आरम्भ करने पर, प्रकृति ने शरीर को स्वस्थ करने का कार्य आरम्भ कर दिया है।

यहाँ पर मोटे मटे उन उपद्रवों पर कुछ प्रकाश डालेंगे और उनके कारण तथा समाधान करने के उपाय बताएँगे। उनके द्वारा उत्पन्न होने वाली व्याधियों का शरीर को स्वस्थ रखने और सदा प्रसन्न रहने की चेष्टा करनी चाहिए।

शरीर में पीड़ा

उपवास आरम्भ करने के साथ ही शरीर में पीड़ा महसूस होने लगती है। जिनके शरीर में विकार कम होते हैं, उनको कम शरीर में विकार अधिक होते हैं, उनको अधिक पीड़ा होती है।

शरीर की पीड़ा कोई नयी व्याधि नहीं है। जो शरीर में संचित था, भोजन चन्द करने के बाद, १५

रसमें उत्तजना पैदा होती है। जिससे मल उभड़ता है और शरीर में पाडा पैदा करता है। किसी-किसी का तो इतनी अधिक पीड़ा होती है जो सहन नहीं होती। उस दशा में घबराना न चाहिए और न उसको दूर करने के लिए कोई दूसरा उपाय ही करना चाहिए। यह पीडा कई रोज तक रहता है और जितना मल क्षीण होता जाता है, उतनी ही पीडा कम हाती जाती है।

शरीर में गर्मी

उपवास आरभ करने पर शरीर गर्म होजाता है। किसी-सा के शरीर में यह गर्मी इतनी बढ़ जाता है जो बुखार मालूम ती है। यह ठीक है कि इस प्रकार की गर्मी को ही ज्वर कहते। उपवास आरभ करने के बाद शरीर के भीतर में विष निकलने का काय जो आरभ होता है उसी से शरीर में गर्मी बढ़ जाती है। उससे किसी प्रकार की चिन्ता न करके यह समझना चाहिए कि प्रकृति, शरीर के भीतर से विष विसर्जन का कार्य कर रही है। विष में उत्ताप होता है। उस उत्तापपूर्ण विष के सम्पर्क से शरीर गर्म होजाता है।

इस गर्मी को ज्वर समझकर स्नान करना बन्द न करना चाहिए। जैसा कि पिछले पन्नों में बताया गया है, नित्य नियम पूर्वक प्रातः काल स्नान करना चाहिए। गर्मा के दिनों में यदि सायंकाल को भी स्नान किया जाय तो अच्छा होता है। नहाने का पल शीतल और स्वच्छ होना चाहिए। इस प्रकार स्नान से शरीर में उत्पन्न हुई गर्मी शान्त होगी और चित्त को प्रसन्नता मिलेगी।

२०—उपवास के दिनों में उपद्रव

उपवास के दिनों में अनेक प्रकार के उपद्रव पैदा होते हैं। जिन लोगों को उन उपद्रवों का कारण नहीं मालूम, इन उपद्रवों से घबराने लगते हैं। परन्तु घबराने की बात नहीं है। जिसके शरीर में जितना अधिक विकार होता है, उसके शरीर में उतने ही अधिक उपद्रव पैदा होते हैं। वास्तव में यह उपद्रव नहीं हैं, किन्तु वे लक्षण हैं, जिनके द्वारा हमें इस बात का ज्ञान होता है कि उपवास आरम्भ करने पर, प्रकृति ने शरीर को नीरो करने का काय आरम्भ कर दिया है।

यहाँ पर मोटे मटे उन उपद्रवों पर कुछ प्रकाश डाला जाय और उनके कारण तथा समाधान करने के उपाय भी बता जायेंगे। उनके द्वारा उत्पन्न होने वाली व्याधियों का शमन करना चाहिए और सदा प्रसन्न रहने की चेष्टा करनी चाहिए।

शरीर में पीड़ा

उपवास आरम्भ करने के साथ ही शरीर में पीड़ा पैदा होती है। जिनके शरीर में विकार कम होते हैं उनको कम और जिनके विकार अधिक होते हैं, उनको अधिक पीड़ा होती है।

शरीर की पीड़ा कोई नयी व्याधि नहीं है। जो मूल शरीर में संचित था, भोजन बन्द करने के बाद, प्रकृति की ओर से

जाती। फिर भी ऐसे कुछ लोग हो सकते हैं, जिनको उट्टी हाती है। उट्टी के द्वारा विना पचा हुआ भोजन मुख से निकलता है। उसके अभाव में कभी कभी पित्त गिरता है।

कुछ रागियों को लम्बे उदराना के अंत में भा उट्टी होती देयी गया है। परन्तु बहुत कम। और और कभी उट्टी का हाना खराब होता है। यदि ऐसी उट्टी हाता नकर लना चाहिए कि शरीर के भातर बहुत पुराना विष मौजूद है। एता दशा में यदि किसी अनुभवी आदमी के सहायता ला जाय ता अधिक अच्छा होता है।

कहा जाने के बाद मुह साफ कर डालने पर ठण्डा पानी पीना चाहिए और इस प्रकार का पानी थोड़ी थोड़ी देर के बाद बराबर पाना चाहिए। नाडिया के उत्तेजित हा जाने पर और स्नायुओं की गति नीचे की आर क बचाय ऊपर की ओर हो जाने पर उट्टी होती है। स्नान और शीतल जल का पान इसमें लाभकारी होता है।

आँखों में जलन

उपग्राम से आँखों में जलन पैदा होती है। यह जलन जब अधिक हो जाती है तो ऐसा मालूम हाता है जैसे आँखा से लपटें निकल रही हो।

इस दशा में ठण्डे पानी से खूब नहाना चाहिए और शीतल तथा हवादार स्थानों में लेटर विश्राम करना चाहिए। यदि अधिक अशान्ति मालूम हो तो ठण्डे पानी की पट्टियाँ आँखों पर

मस्तक-पीड़ा

सिर में पीड़ा उत्पन्न होना भी यही कारण है, जिन कारणों से शरीर में पीड़ा और गर्मी पैदा होती है। यह पीड़ा कम और अधिक हो सकती है। कम थार अधिक होना शरीर के विकारों पर निर्भर है। यदि अधिक पीड़ा मालूम हो और शीतल जल से भली प्रकार स्नान करने पर भी ठीक ठीक न हो तो सिर में ठण्डे पानी की पट्टियाँ चढ़ाना चाहिए। इससे कुछ शान्ति अवश्य मिलती। लेकिन जड़ से पीड़ा तब तक न जायगी, जब तक शरीर के भातर विष मौजूद रहेगा।

पेट में जो मल एकीकृत हो जाता है उस मल से बना हुआ विष जब रक्त में मिश्रित हो जाता है और वह मिश्रित रक्त जब मस्तिष्क की थार दौड़ता है तो उससे सिर में पीड़ा उत्पन्न होती है। अतएव जब तक रक्त से वह विष निकल नहीं जाता, तब तक बराबर पीड़ा होता है। साधारण मस्तक पीड़ा में केवल स्नान से ही काम चल जाता है किन्तु अधिक पीड़ा में शीतल पानी की पट्टियाँ ही चढ़ाना चाहिए। किसी तेल अथवा औषधि का प्रयोग न करना चाहिए।

उल्टी होना

उपवास के दिनों में कभी उल्टी भी होती है, परन्तु सभी को नहीं। उल्टी होने से कोई चिंता की बात नहीं होती। उपवास के साथ-साथ एनीमा का प्रयोग करने से उल्टी की आशंका नहीं रह

जाती। फिर भी ऐसे कुछ लोग हो सकते हैं, जिनको उल्टी हाती है। उल्टी के द्वारा विना पचा हुआ भोजन मुँह से निकलता है। उसका अभाव से कभी कभी पित्त गिरता है।

कुछ रोगियों को लम्बे उपासनों के अंत में भाँज उल्टी होती देयी गयी है। परन्तु बहुत कम। री अंग्रेज की उल्टी का हाना खराब होता है। यदि ऐसी उल्टी हाँता सनक लना चाहिए कि शरीर के भीतर बहुत पुराना विष भोजन है। असा दशा में यदि किसी अनुभवी आदमी के सहायता ला जाय ता अधिक अन्धा होता है।

कहा जाने के बाद मुँह साफ कर डालने पर ठण्डा पानी पीना चाहिए और इस प्रकार का पानी थोड़ी थोड़ी देर के बाद बराबर पीना चाहिए। नाडियों के उत्तन्त्रित हाँ जाने पर और स्नायुओं का गति नीच की आरक प्रताप उपर की ओर हो जाने पर उल्टी होती है। स्नान और शीतल जल का पान इसमें लाभकारी होता है।

आँखों में जलन

उपास से आँखों में जलन पैदा हाती है। यह जलन अत्र अधिक हो जाता है ता ऐसा मालूम हाता है जैसे आँखा से लपटें निकल रही हो।

इस दशा में ठण्डे पानी से खूब नहाना चाहिए और शीतल तथा हवादार स्थानों में लेटकर विश्राम करना चाहिए। यदि अधिक अत्यन्त मालूम हो तो ठण्डे पानी की पट्टियाँ आँखों पर

बढ़ाना चाहिए। प्रायः ऐसा होता है कि लोग, व्यास न लगने पर पानी नहीं पीते, उस दशा में इस प्रकार के उपद्रव अधिक पैदा होते हैं। इसलिए बिना व्यास ही ठण्डा पानी पाना चाहिए और बार-बार पीना चाहिए।

हिचकी आना

उपवास के दिनों में हिचकी आने की भी शिकायत, कभी-कभी और किसी-किसी को हो जाती है। या तो हिचकी एक साधारण बात है, परन्तु यदि किसी कारण से इसकी अविकृता हो जाती है तो यह हानिकारक भा होती है। परन्तु बहुत कम इसके संयोग देखे जाते हैं।

साधारण हिचकी में, शीतल जल पीने से काम चल जाता है। उपवास के आरम्भ में एनीमा का जा प्रयोग किया जाता है, उसके द्वारा एकत्रित मल निरुल जाता है। उस दशा में इस प्रकार के उपद्रव की आशंका बहुत कम रह जाती है। फिर भी किसी-किसी को इस प्रकार का कष्ट हो सकता है। हिचकी का संयोग पित्त के व्यतिक्रम से पैदा होता है। इसको शांत करने के लिए ठण्डे जल के स्नान और हिप-ग्राय लेना ही परियाप्त होगा।

यदि उचित रूप से स्नान न किए जायेंगे, अधिक पानी न पिया जायगा तो इस प्रकार के उपद्रवों की आशंका हाती है। इसलिए कि शरीर के भीतर का विष बड़ी तेजी के साथ शरीर से निकलने लगता है। उस समय अनेक प्रकार के कोष और उपद्रव हो सकते हैं और वे सब विचारों के ऊपर निर्भर हैं।

उपरि कभी-कभी चक्रर आत है। प्रारभ
 लकर। चक्रर आने पर सागरतया
 चक्ररि क मजारी के कारण चक्रर

उपवास करने वा ता न
 में नहीं, सिन्तु कुछ प्रा
 लाग समकन लगन न दि
 आत है, परन्तु एमा प्रा
 उपवास के दिना म शगर
 तेरा के ना प्र उचिता न
 आत लगन है। चक्रर
 आय, उपा ठण्ट पाना न
 के तिन हा ता ना पिपा प्र
 प्यान ठण्टा पाता पाता न
 ताज नात्र ना रम पाता च
 कता नहा है। इम वान न

धैक कमजोरो

तक प्र न हा जाय, तय मजारी का अनुभव ता सभी लोग
 के उपर ठण्टे पानी म कपसा के विद्वाना का कहना है कि उपवास
 अजो लाग निर्मलता को अनुभव करते है,
 न है। होता यह है कि मनुष्य क दिल

उपवास के दिना म
 करत है। प्राकृतिक चिन्ति
 से निर्मलता नहीं आती।
 उसका कारण उनका अज्ञ
 में यह भाव भरा रहता है

है, इसलिए उपवास के बाद जो शरीर की स्वाभाविकता में अन्तर पड़ता है, उसको वह उसी निर्बलता के रूप में अनुभव करने लगता है।

इसलिए सब से पहले अपने दिल से इस प्रकार का फिन्स निकाल देना चाहिए। इस बात पर भली-भाँति विश्वास करना चाहिए कि साधारण तोर पर उपवास निर्बलता नहीं पैदा करता क्या कि उपवास के दिनों में जठराग्नि भोज्य पदार्थों के पचाने के काय के बजाय एकत्रित मल के पचाने का कार्य किया करती है। इसलिए जब तक मल ठीक-ठीक पच नहीं जाता, तब तक खाने की चिन्ता करना निलकुल व्यर्थ की बात है। हाँ, विशेष दशाओं में अधिक कमजोरी की उपेक्षा भी न करनी चाहिए। जैसे अधिक वृद्ध और रोग के कारण निर्बल मनुष्य, उपवास से पूर्व अत्यन्त शक्तिहीन स्त्री और बालक अथवा इसी प्रकार के अन्य व्यक्ति यदि अधिक कमजोरी में दिखाई दे और अवस्था चिन्तानकर मालूम हो तो उपवास के अनुभवों को दिखा लेना चाहिए। यह दशा लम्बे उपवासा में ही हो सकती है और उन अवस्थाओं में इसकी सम्भावना होती है जब प्रकृति मल और विष निकालने का कार्य पूरा कर चुकती है। उस समय यदि अनुभवहीनता से उपवास न तोड़ा जाय तो शारीरिक क्षति पहुँच सकती है।

अब प्रश्न यह है कि इस बात को कैसे समझा जाय कि उपवास का कार्य समाप्त हो चुका है? यह प्रश्न ठीक है,

इसका उत्तर, 'उपवास कर और कैसे ताड़ना चाहिए', नामक शापक में विस्तार के साथ दिया जाएगा।

नाड़ी की चाल में अन्तर

उपवास के दिना की चाल में अन्तर हा जाना साधारण बात है। यह अन्तर कभी-कभी चाल में कमी कर नेता है और कभी अधिकता। ऐसा ही जाने पहुन स्वाभाविक है। इसलिए सहन ही उन पर चिन्ता करने की आवश्यकता नहा है।

इस बात की ध्यान में रखना चाहिए कि पुष्प की नाड़ी की गति एक मिनट में ७० और म्रिया की नाडा ८० होती है। यह गति जय मन्त्र हाता ले ता ९० १० और १० तक हा जाती है। किन्तु जय तजो पर हाती है, तय १०० ११०, १२० और कभी-कभी इससे भी अधिक हो जाता है।

यदि नाड़ी की गति १० तक आनाय ता ना चिन्ता की बात नहीं हाता। उपवास-चिकित्सा के उड-उड डाक्टरा का कहना है कि नाड़ी की गति कम हाते-हात चानीस क आस पास आजाने पर भा किनी प्रकार की दुपटना नहा देखी गयी। किन्तु यदि इतनी कमा के साथ यदि शरीर में कुछ और धुरे लक्षण न होती हा।

उपवास के कारण रक्त की गति में कमी नहीं आती। किन्तु यदि उसमें अधिक कमी मालूम हो, परा के नीचे क भाग अधिक उण्डे मालूम हा और हाठो का स्वाभाविक रंग बदल जाय तो चिन्ता की बात समझनी चाहिए, परन्तु ऐसा साधारणतया

सयोग नहा आता। यदि इस प्रकार की दशा किना रोग पैदा हो जाय तो साम्यानी से काम लेने की आवश्यकता सत्र से पहले यह जानना चाहिए कि उपवास में ऐसे अ नहों आत। और आते भाई ता उन्हीं के साथ जो उपवास दिनों म न ता व्यायाम ही करते है और न शारीरिक परिश्रम

इस प्रकार के उपद्रव रोगान के लिए व्यायाम, वायु और शारीरिक परिश्रम बहुत आवश्यक है। किन्तु यदि भासु के कारण व्यायाम और परिश्रम म अधिक्ता बरती जाय तो उससे भा हानि ही होगी। इसलिए उसकी मात्रा उतनी ही चाहिए जिससे शरीर को असुख और अशान्ति न मालूम नाड़ी की गति मंद होने के साथ-साथ यदि ऊपर बताये अशुभ लक्षण प्रतात हा ता यदि सम्भव हो सके तो साधा व्यायाम करना चाहिए, अन्यथा मोटे और गर्म कम्बल ओढ़ शरीर म गरमी पहुँचायी चाहिए, किन्तु मुह न ढरना चाहिए स्वच्छ और ताजी वायु परापर मिलनी चाहिए।

यदि नाड़ी की गति अधिक तीव्र हो जाय, उस दशा मे १० तक अधिक चिन्ता की आवश्यकता नहीं है। किन्तु यदि अ तीव्र होती हुई दिखाई दे तो शीतल जल के स्नान और हिप-ब से उसको शान्त करना चाहिए। किन्तु उसकी शान्त के लिए दोना प्रयोगा को उचित सात्रा मे ही काम मे लाना चाहिए।

२१--उपवास से न अच्छे होनेवाले रोग

शरीर में कुछ ऐसे रोग भी उत्पन्न होते हैं जिनमें उपवास का प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि शरीर की प्रत्येक अवस्था में उपवास लाभकारी है। ऐसा कहना अपने आप को भ्रम में डालना है और दृग्मर को भी भुलाना देना है।

कोई भी विज्ञान वहाँ तक काम करता है जहाँ तक काम करने के लिए उसमें तत्व पाये जाते हैं। उपवास शरीर-विज्ञान की क्रिया है। इस क्रिया का शारीरिक रागा और विकारों से किस प्रकार सम्बन्ध है, इसको समझ ले। चाहिए और यह भी जान लेना चाहिए कि किस प्रकार की व्याधियों में उससे लाभ उठाया जा सकता है और किन में नहीं। यहाँ पर उस प्रकार के रोगों का सन्धेप में वर्णन करना है जिनमें उपवास लाभकारी सिद्ध नहीं हुए। इसके सब में ठीक-ठीक जान लेना और समझ लेना बहुत आवश्यक है।

टूटे हुए अंग

चोट खाकर अथवा किसी अन्य प्रकार के सयोग से जब शरीर का कोई अंग टूट जाता है तो उसके जड़ने का वाय उपवास के द्वारा नहीं होता। इसी प्रकार जब किसी बाहरी कारण से शरीर का कोई अंग, भग होजाता है तो उसका ठीक करना

उपवास का काम नहीं है। उसका ठीक करना उन्हीं का कार्य है जो लाग टूटे हुए अंगों का जोड़ा करते हैं।

यही नहीं बल्कि शरीर के भीतरी सुकुमार अंग जब कहीं कारणों या संयोगों से टूट जाते हैं, अथवा नष्ट हो जाते हैं ता उनके जाड़ने और फिर से उत्पन्न करने का कार्य उपवास के द्वारा नहीं होना। इसलिए ऐसी दशाओं में जो लाग टूटे हुए अंगों का ही काम करने हैं, उन्हीं से सहायता लेनी चाहिए।

मोच अथवा किसी हड्डी आदि का हट जाना

प्रायः हाथ या पैर में मोच आजाती है जिसके कारण कभी-कभी बड़ा वृष्ट हो जाता है। अथवा चोट या बक्का स्पर्श कोई हड्डी अपने स्थान से हट जाती है। उसमें भी बड़ा वृष्ट होता है। इन सभी दशाओं में उपवास से लाभ नहीं होता। इनके लिए उन्हीं लोगों से सहायता लेनी चाहिए, जो लोग हड्डियों के बिठाने का काम करते हैं।

किन्तु हाँ यदि किसी अंग के टूटने या हटने से उस स्थान में विष उत्पन्न हो जाय तो उस विष को निकालने का कार्य उपवास के द्वारा ही ठीक ठीक हो सकता है। जिस स्थान पर इस प्रकार का विष मात्र पड़े, उस स्थान को जल से खूब धोना चाहिए, मिट्टी का प्रयोग करना चाहिए और उपवास करके उसके विष को नष्ट कर देना चाहिए।

ज्वरम फोडा और घाव

ज्वरम, फोडा प्रार प्राय लगभग एक ही हैं। इनका प्रारम्भिक अवस्था में भी उपवास का अधिक प्रभव नहीं पडा। इसलिए उनके सम्बन्ध में उपवास करना अनुपयोगी ही होता है।

फोडा, ज्वरम और घाव में मिट्टी के प्रयोग चाटू का-मा असर डालते हैं और बहुत जल्दी महान फल देते हैं। किन्तु यदि ज्वरम निगड जाय और उमन निष उत्पन्न हो जाय तो शातल बल की पट्टी तथा मिट्टी के प्रयोग का साथ साथ प्रति उपवास किया जाय तो उत्पन्न हुए विष का निराकरण सम्पन्न हो सकेगा है।

मस्तिष्क के रोग

मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओं का नष्ट हो जाना या विक्षिप्त अवस्था पैदा हो जाती है उसका कई रूप होते हैं। साधारण तौर पर निगड़े हुए मस्तिष्क का पागलपन कहते हैं। गिन दशाओं में मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तुओं का क्षय हो जाता है और उनमें जो विक्षिप्त अवस्था पैदा होता है, उनमें भी उपवास से लाभ नहीं होता। उनके लिए जल चिकित्सा अधिक लाभकर सिद्ध हुई है।

सूखा रोग

यह रोग प्राय वृद्धों को ही होता है। जिसमें उनके शरीर का रक्त और मांस सूख जाता है और उसके बाद हड्डियाँ भी सूखने लगती हैं। सूखा रोग में उपवास से लाभ नहीं होता।



२२—उपवास से अच्छे होनेवाले रोग

साधारण रूप में यह मसक लना चाहिए कि उपवास उन सभी रागों में लाभ पहुँचाता है जो राग, शरीर के भातर एरुत्रित मल और विकारा के कारण उत्पन्न होते हैं। यह विकार हमारे समय और नियम से न रहने के कारण पैदा होते हैं, और उसके बाद भी प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करने के कारण हम अपने शरीर को रोगी बनाते हैं। इस प्रकार के सभी रोगों का निवारण करने में उपवास से अधिक स्थायी लाभ पहुँचाने वाला और कोई साधन नहीं हो सकता।

अच्छे होने वाले रोग

यद्यपि रोगों की सख्या इतनी नहीं है जो गिनाई जासके, परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार उन सभी रोगों का मूल कारण, जो मल और उसके विष के द्वारा उत्पन्न होते हैं, एक हैं। फिर भी भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न रोगों का प्रादुर्भाव होता है। ऐसी दशा में यह आवश्यक होगा कि यहाँ पर कुछ ऐसे रोगों के सम्बन्ध में सक्षेप में प्रकाश डाला जाय, जिनके द्वारा उपवास से अच्छे होने वाले रोगों का अनुमान होसके—

क्षय, तपेदिक—यह अत्यन्त घातक रोग होता है। दुर्भाग्य से जिसको लग जाता है, उसको अत करके ही छोड़ना है।

त और प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा यह रोग सेहत किया
गया है।

डिस्टीरिया, प्लूरारोग—यह रोग अधिकांश में स्त्रियों को हाता
चिनको यह रोग हो जाता है उनका जीवन-भर यह रोग
के साथ रहना है। उपवास के द्वारा डिस्टीरिया का नाश
था है।

सभी प्रकार के ज्वर—फैमा भा ज्वर क्यों न हो उपवास
सबसे प्रधान औपधि है।

सभी प्रकार की पॉन्ती—चाहे जैसी खामी हो, उपवास क
द्वारा सरलता पूरक उमका निर्मूल होता है।

श्वास का रोग—यह रोग न केवल रोगी के जीवन भर रहता
है, किन्तु रोगी को सतान में भी अपना प्रभाव डालता है। इसको
दूर करने का उपवास ही एक साधन है।

गले के रोग—गले के समस्त रोगों का शमन उपवास के
द्वारा होता है।

मानसिक निर्जलता—किन्हीं कारणों से जो मानसिक निर्जलता
पैदा हो जाती है और जिसके दूर करने के लिए कोई भी औपधि
नहीं होती, वह भी उपवास के द्वारा दूर होती है।

नाक के रोग—नाक से सम्बन्ध रखने वाले किसी भी
प्रकार के रोग उपवास से द्वारा समूल नष्ट होते हैं। यहाँ तक
कि चिनकी नाक में सूजने का गुण पैदापशी नहीं पाया गया
उपवास के द्वारा नाक की उस त्रुटि को दूर किया गया है।

चर्म रोग—दाद रान, फाड़ा-फुमो आदि-आदि जितने भी चर्म रोग कहलाते हैं, उपवास के द्वारा जड़ से नष्ट हो जाते हैं।

प्रन्ध रोग—स्त्रियों की यह भयानक बामारी है। इसका निवारण श्रीपथिया के द्वारा कभी नहीं होता। उपवास से सदा के लिए इसका अंत हो जाता है।

प्रमेह, मीय रोग—वीर्य-सम्बन्धी जितने भी रोग हैं, उपवास के द्वारा वे सब शान्त हो जाते हैं और शरीर सदा के लिए नीरोग हा जाता है।

चेचक—चेचक जैसे सत्रामक रोगों में श्रीपथियों का प्रयोग नहीं किया जाता। इस प्रकार के भयानक रोग उपवास के द्वारा अच्छे होते हैं।

ऊपर जो रोग बताये गये हैं, इनसे सम्बन्ध रखने वाले सभी प्रकार के रोग उपवास के द्वारा अच्छे होते हैं। रोगों का शमन तो एक साधारण काम है जो उपवासों के द्वारा होता ही है, किंतु लम्बे उपवासों से इतने विस्मयजनक फल पाये जाते हैं जो समझ में नहीं आते। विशेषकर शरीर की पैदायशी चुटियों में।

यहाँ पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार आग में तपकर सोना सारा सानित होता है, उसी प्रकार उपवास के द्वारा शरीर विशुद्ध तैयार होता है।

२३-रोग और उनके लिए उपवास

सभी प्रकार के रोगों में एक से उपवासों की आवश्यकता नहीं होती। जो जैसे राग हात दे, उनके लिए उसी प्रकार का उपवास करना पड़ता है। उपवास तीन प्रकार के माने गये हैं, अर्द्धोपवास, छोटे उपवास और बड़े उपवास। इन तीनों प्रकार के उपवासों की व्यवस्था रोग के अनुसार करनी पड़ती है।

अर्द्धोपवास

जिन लोगों ने पहले कभी उपवास नहीं किया वे उपवास करने में एक प्रकार भय का अनुभव करते हैं। इसके सिवा नये उपवास करने वाला के लिए, या भी आवश्यक होता है कि छोटा और बड़ा, कोई भी उपवास आरंभ करने के पूर्व उपवास का कुछ अभ्यास होना आवश्यक है। इसलिए उन्का पहले अर्द्धोपवास करके उपवास का अभ्यास एक-दो बार कर लेना चाहिए।

यदि शरीर में कोई विशेष रोग नडा है तो भावभा कभी अर्द्धोपवास कर लेना बहुत ही उपयोगी होता है। यदि प्रत्येक माह में अथवा दो महीने में एक बार अर्द्धोपवास कर लिया जाय तो फिर छोटे और बड़े उपवासों की आवश्यकता ही न पड़ेगी। किन्तु यदि शरीर में कोई विशेष रोग मौजूद है तो

छोटे उपवास

साधारण रोगों में छोटे उपवास किये जाते हैं। कुछ रोगों में यह भी कहना है कि यदि मामूली रोगों में उड़े उपवास ली जाय तो अधिक लाभ नहीं होता, परन्तु हमारी समझ में उपवास के नियंत्रण के पश्चात् न तो उपवास किया जा सकता है और उसको उपवास कह ही सकते हैं। छोटे उपवास १ दिन, २ दिन, ३ दिन, ४ दिन, ५ दिन, ६ दिन, ७ दिन, ८ दिन, ९ दिन, १० दिन, ११ दिन, १२ दिन, १३ दिन, १४ दिन, १५ दिन, १६ दिन, १७ दिन, १८ दिन, १९ दिन, २० दिन, २१ दिन, २२ दिन, २३ दिन, २४ दिन, २५ दिन, २६ दिन, २७ दिन, २८ दिन, २९ दिन, ३० दिन, ३१ दिन, ३२ दिन, ३३ दिन, ३४ दिन, ३५ दिन, ३६ दिन, ३७ दिन, ३८ दिन, ३९ दिन, ४० दिन, ४१ दिन, ४२ दिन, ४३ दिन, ४४ दिन, ४५ दिन, ४६ दिन, ४७ दिन, ४८ दिन, ४९ दिन, ५० दिन, ५१ दिन, ५२ दिन, ५३ दिन, ५४ दिन, ५५ दिन, ५६ दिन, ५७ दिन, ५८ दिन, ५९ दिन, ६० दिन, ६१ दिन, ६२ दिन, ६३ दिन, ६४ दिन, ६५ दिन, ६६ दिन, ६७ दिन, ६८ दिन, ६९ दिन, ७० दिन, ७१ दिन, ७२ दिन, ७३ दिन, ७४ दिन, ७५ दिन, ७६ दिन, ७७ दिन, ७८ दिन, ७९ दिन, ८० दिन, ८१ दिन, ८२ दिन, ८३ दिन, ८४ दिन, ८५ दिन, ८६ दिन, ८७ दिन, ८८ दिन, ८९ दिन, ९० दिन, ९१ दिन, ९२ दिन, ९३ दिन, ९४ दिन, ९५ दिन, ९६ दिन, ९७ दिन, ९८ दिन, ९९ दिन, १०० दिन का उपवास छोटे उपवासों में गिना जाता है।

नीचे कुछ ऐम रोग बताये जाते हैं जिनका निराकरण उपवास से हा जाता है—

- १—सिर दर्द, आधे सिर की पीडा आदि
- २—काष्ठवद्धता, अपन के कारण
- ३—जुकाम-ज्वर, उममे उत्पन्न हुई व्याधियाँ
- ४—कोड़े-कुसी, अन्धौरी इत्यादि
- ५—अतिसार, पेचिश के रोग
- ६—चम रोग, राज-दाद आदि
- ७—रन्त रोग, पायोरिया आदि
- ८—पेट की पाडा, उदर से सजव रखने वाले रोग
- ९—खाँसी, रुक के निगडने से उत्पन्न हुए रोग
- १०—गले का रोग (Tonsil)
- ११—इल्कुएन्जा
- १२—टीके से उत्पन्न हुआ ज्वर अथवा अन्य विकार

२३-रोग और उनके लिए उपवास

प्रकार के रोगों में एक में उपवास की आवश्यकता नहीं होती। जो उसे राग दात है। उन के लिए उपास प्रसार का काम करना पड़ता है। उपवास तीन प्रकार के माने जाते हैं। विषम, छोटे उपवास और बड़े उपवास। इन तीनों प्रकार के उपासों की व्यवस्था रोग के अनुसार करनी पड़ती है।

अर्द्धोपवास

जिन लोगों ने पहले कभी उपवास नहीं किया व उपवास करने में एक प्रकार का भय का अनुभव करते हैं। इसका मिया उपवास करने वाला के लिए, या भी आवश्यक होता है कि रोग और बड़ा, कोई भी उपवास आरंभ करने के पूर्व उपवास का कुछ अभ्यास होना आवश्यक है। इसलिए उपास पहले अर्द्धोपवास करके उपवास का अभ्यास करना शुरू करना चाहिए।

यदि शरीर में कोई विशेष रोग नहीं है तो भी कभी-कभी अर्द्धोपवास कर लेना बहुत ही उपयोगी होता है। यदि प्रत्येक साह में उपवास के महीने में एक बार अर्द्धोपवास कर लिया जाय तो फिर छोटे और बड़े उपवासों की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। किन्तु यदि शरीर में कोई विशेष रोग मौजूद है तो

छोटे उपवास

साधारण रोगों में छोटे उपवास किये जाते हैं। कुष्ठ रोग का यह भाग कहना है कि यदि मामूली रोगों में बड़े उपवास जाँय तो अधिक लाभ नहीं होता, परन्तु हमारी समझ में निवारण के पश्चात् न तो उपवास किया जा सकता है और उसको उपवास कह ही सकते हैं। छोटे उपवास १ दिन, २ भोजन न करने को भी कहते हैं और १ दिन से लेकर १ सप्ताह तक का उपवास छोटे उपवासों में गिना जाता है।

नीचे कुष्ठ ऐम रोग बताये जाते हैं जिनका निराकरण उपवासों से हो जाता है—

- १—सिर दर्द, आधे सिर की पीड़ा आदि
- २—कोष्ठवद्धता, अपच के कारण
- ३—जुलाम-ज्वर, उससे उत्पन्न हुई व्याधियाँ
- ४—फोड़े जुँसी, अन्वौरी इत्यादि
- ५—अतिसार, पेचिश के रोग
- ६—चम राग, खाज-दाद आदि
- ७—दन्त-रोग, पायारिया आदि
- ८—पेट की पांडा, उदर से सत्रध रक्तने वाले रोग
- ९—सॉसी, कफ के निगडने से उत्पन्न हुए रोग
- १०—गले का रोग (Tonsil)
- ११—इल्कुएन्ना
- १२—टोके से उत्पन्न हुआ ज्वर अथवा अन्य विकार

१३—साधारण वीर्य सवधी राग

१४—पसली की पीडा

१५—मासिक-वर्म सम्बन्धी रोग

१६—मूत्राशय की बीमारियों

१७—उपासीर, गुदा से राग

इस प्रकार क अथवा इनस समय करनेवाले सभी प्रकार रोगों में छोटे उपवास से काम लिया जाता है। इनमें बड़े वासा की आवश्यकता है और न वे किए ही जाने चाहिए।

बड़े उपवास

जो रोग पुराने हो जाते हैं और जिनके विष, रक्त में इस र मिश्रित हो जाने हैं कि उनका जल्दी निकालना किसी र सम्भव नहीं होता, उन रोगों में बड़े उपवास किए जाते और उसी रूपा में पूर्ण लाभ होता है।

बड़े उपवास एक सप्ताह से लेकर तीन और चार-चार ह तक के किये जाते हैं। कुछ विशेष रोगों में तो लोगों ने से भी बड़े उपवास किए हैं और उनसे परापर फायदा उठाया विशेषों में, विशेष रोगों में ये-जा महीने तक के उपवास करने से लोग मिलते हैं। उनको देखकर यह अश्चर्य दूर होजाती है विना खाये हुए मनुष्य जल्दी मर सकता है।

नीचे कुछ रोग बताये जाते हैं जो अपना बड़े उपवासों के रूप से सेहत नहीं होते—

१—बहुमूत्र रोग (Diabetes)

बामों में खाने की मात्रा सम्मिलित रहती है, उनका वर्णन अर्द्धापवास में कर चुके हैं।

उपवास के दिनों में जिन नियमों का अनुसरण किया जाता है, उन पर भा विस्तार के साथ पहले लिखा जा चुका है। यहाँ मनेष में उक्त अर्चा कर देना ही पर्याप्त होगा—

(१) एनीमा—साधारण विकारा में उपवास आरम्भ करके पात्र दिना तक लगातार एनीमा देना चाहिए। पहले दिन साबुन मिलाकर करके अर शेष दिनों में केवल गर्म पानी का प्रयोग करना चाहिए। यदि पहले दिन किसी प्रकार का कष्ट होनाय तो दूसरे दिन एनीमा न देकर तीसरे दिन देना चाहिए।

(२) जल पीना—इस बात को न भूलना चाहिए कि शीतल जल बराबर पीना बहुत लाभदायक है। उपवास के दिनों में नियम बना लेना चाहिए कि आधा-आधा घण्टे पर एक-एक पात्र पानी पिया जाय। यदि सर्दों के दिन हों तो एक घण्टे के बाद पीना चाहिए।

(३) हिप-बाथ—जितने दिन उपवास रखा जाय, उतने दिन में एक बार या दो बार हिप-बाथ या कटि स्नान अवश्य लेना चाहिए।

(४) स्नान करना—नित्य नियमपूर्वक ठण्डे जल में स्नान करना चाहिए। यदि गरमी के दिन हों तो सुबह और शाम—दो-दो मिनट स्नान करना चाहिए।

१३—साधारण धीर्य-सवयी राग

१४—पमली की पीड़ा

१५—मासिक-वर्म सम्बन्धी राग

१६—मूत्राशय की धामारियाँ

१७—प्यासीर, गुदा में राग

इस प्रकार के उपवास इनसे मध्य रक्तनेत्राले सभी प्रकार रागों में द्रोष्टे उपवासा से काम लिया जाता है। इनमें न बड़े कामों की आवश्यकता है और न वे फिर ही जाने चाहिए।

बड़े उपवास

जो रोग पुराने हो जाते हैं और जिनके विष, रक्त में इस तरह मिश्रित हो जाते हैं कि उनका जल्दी निरालना किसी तरह सम्भव नहीं होता, उन रागों में बड़े उपवास किए जाते और उसी ढंग में पूरा लाभ होता है।

बड़े उपवास एक सप्ताह से लेकर तीन-तीन और चार-चार सप्ताह तक के किये जाते हैं। कुछ विशेष रोगों में तो लोगों ने उसे भी बड़े उपवास किए हैं और उनसे धरातर फायदा उठाया। विशेषा में, विशेष रोगों में जन्दा महीने तक के उपवास करने से लोग मिलते हैं। उनको देखकर यह आशंका दूर होजाती है कि बिना खाये हुए मनुष्य जल्दी मर सकता है।

नीचे कुछ रोग बताये जाते हैं जो अपना बड़े उपवासों के रूप से सेहत नहीं हाते—

१—बहुमूत्र रोग (Diabetes)

वासों में राने की मात्रा सम्मिलित रहती है, उनका वर्णन अर्द्धापवास में कर चुके हैं।

उपवास के दिना में जिन नियमों का अनुसरण किया जाता है, उन पर भी विस्तार के साथ पहले लिखा जा चुका है। यहाँ सक्षेप में उनकी चर्चा कर देना ही पर्याप्त होगा—

(१) एनीमा—साधारण विधारा में उपवास आरम्भ करके तीन दिनों तक लगाना एनीमा देना चाहिए। पहले दिन सातुन मिश्रित करके अथवा शयन दिना में केवल गर्म पानी का प्रयोग करना चाहिए। यदि पहले दिन जिसो प्रहार का दृष्ट होनाय तो दूसरे दिन एनीमा न देकर तीसरे दिन देना चाहिए।

(२) जल पीना—इस बात को न भूना चाहिए कि शीतल जल बराबर पीना बहुत लाभदायक है। उपवास के दिनों में नियम बना लेना चाहिए कि प्रातः-आय धरटे पर एक-एक पाओ पानी पिया जाय। यदि सरदो के दिन हो ता एक एक घरटे के बाद पीना चाहिए।

(३) द्विप-पाथ—चितने दिन उपवास रखा जाय, उतने दिन में एक बार या दो बार द्विप-पाथ या कटि स्नान अवश्य लेना चाहिए।

(४) स्नान करना—नित्य नियमपूर्वक ठण्डे जल में स्नान करना चाहिए। यदि गरमी क दिन हो तो सुबह और शाम—दोनों समय स्नान करना चाहिए।

(५) मिट्टी का प्रयोग—प्रताये हुए नियमों के अनुसार नित्य रात का सोने समय पेड़ पर मिट्टी बाँधने का प्रयोग करना चाहिए।

(६) दैनिक कार्य—अपने नित्य कामों को जल्द ही करना चाहिए, उनको बराबर करना चाहिए। यदि चन्द्रकर मालूम न हो तो उस दशा में केवल शांत स्थान में विश्राम करना चाहिए।

(७) व्यायाम करना—जल्द ही व्यायाम करते हैं उनको नियमानुसार नित्य व्यायाम करना चाहिए। किन्तु जो लोग व्यायाम नहीं करते, उनके लिए आवश्यक नहीं है।

(८) वायु-सेवन—वायु सेवन के निमित्त प्रातःकाल और सायंकाल एक मील दूर मील, तीन मील और चार मील एवं इससे भी अधिक अपनी शक्ति के अनुसार नित्य चलने का काम लेना चाहिए।

(९) विश्राम—उपवास के दिनों में शान्तिपूर्वक विश्राम की बड़ी जरूरत पड़ती है।

(१०) निद्रा—गम्भीर निद्रा का आना अत्यन्त सुखकर और अरोग्यजनक होता है। इसलिए नींद-भर सोने की चेष्टा करनी चाहिए।

(११) स्वच्छ वायु—किसी भी ऋतु में स्वच्छ और ताजी वायु का मिलना बहुत आवश्यक है। सोने का कमरा ऐसा होना चाहिए, जिसमें ताजी वायु के आने का रास्ता हो। सोने के समय खिड़कियाँ कभी बन्द न करनी चाहिए।

उपवास तोड़ने की सूचना देनेवाले लक्षण

उपवास तोड़ने के सम्वन्ध में सबसे महत्वपूर्ण यह बात है कि जब शरीर निर्बिष हो जाय, वस उसी दिन उपवास तोड़ देना चाहिए। इसकी पहचान निम्निलिखित लक्षणों से की जाती है—

१—उपवास आरम्भ करने पर जो भूख मालूम होती है, वह सच्ची भूख नहीं होती। यह भ्रम, आदत की भूख होती है। जब इसको रोक दिया जाता है, तो आरम्भ में कष्ट होता है और फिर धीरे-धीरे वह कष्ट कम होता जाता है। उसके बाद तो भूख ऐसी मिट जाती है कि तिलकुल मालूम ही नहीं पड़ती। उपवास का यह मध्यकाल होता है। यह मरी हुई भूख तब तक जाग्रत नहीं होती, जब तक शरीर पूर्णरूप से निर्बिकार नहीं हो जाता। अतएव उपवास तोड़ने का पहला लक्षण सच्ची भूख का जाग्रत होना है।

२—रागी और विप्रेले शरीर की अवस्था में जिह्वा पर मैल की पपड़ी जम जाती है, यह पपड़ी तब तक दूर नहीं होती, जब तक शरीर के भीतर से मल और विष दूर नहीं हो जाता। अतएव उपवास तोड़ने का समय, उस समय माना जाता है, जब जिह्वा के ऊपर की तह में जमी हुई मैल की पपड़ी नष्ट हो जाती है और जिह्वा का रंग लाल वर्ण हो जाता है।

३—मल और विकार पूर्ण मनुष्य के मुँह से जा वायु निकलती है, उसमें एक प्रकार की दुगन्धि पायी जाती है। यह दुगन्धि, शरीर के निर्बिकार होने पर दूर हो जाती है। अतएव

(५) मिट्टी का प्रयोग—बताय हुए नियमा के अनुसार नित्य रात का सोते समय पेड़ पर मिट्टी घोंघने का प्रयोग करना चाहिए ।

(६) दैनिक स्नान—अपने नित्य क जा स्नान होत हैं, उनको बराबर करना चाहिए । यदि चक्कर मालूम होना उस दशा में केवल शीतल स्थान में विश्राम करना चाहिए ।

(७) व्यायाम करना—जा लाग व्यायाम करत हैं उनका नियमानुसार नित्य व्यायाम करना चाहिए । किन्तु जो लोग व्यायाम नहीं करते, उनके लिए आवश्यक नहीं है ।

(८) आयु-सेवन—आयु सेवन के निमित्त प्रातः काल और मायकाल एक मील, दो मील, तीन मील और चार मील एवं इससे भी अधिक अपनी शक्त के अनुसार नित्य चलने का काम लेना चाहिए ।

(९) विश्राम—उपवास के दिना में शान्तिपूर्वक विश्राम की बड़ी जरूरत पड़ता है ।

(१०) निद्रा—गम्भीर निद्रा का आना अत्यंत सुखकर और अरोग्यजनक होता है । इसलिए नाद-भर सोने की चेष्टा करनी चाहिए ।

(११) स्वच्छ वायु—जिमी भी ऋतु में स्वच्छ और ताजी वायु का मिलना बहुत आवश्यक है । माने का कमरा पसा होना चाहिए, जिसमें ताजी वायु के आने का रास्ता हो । सोने के समय खिड़कियाँ कभी बन्द न करनी चाहिए ।

उपवास तोड़ने की सूचना देनेवाले लक्षण

उपवास तोड़ने के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण यह बात है कि जब शरीर निर्बल हो जाय, वस उसी दिन उपवास तोड़ देना चाहिए। इसकी पहचान निम्नलिखित लक्षणों से की जाता है—

१—उपवास आरम्भ करने पर जो भूख मालूम होती है, वह सच्ची भूख नहा होती। यह भूख आदत की भूख होती है। जब इसको रोक लिया जाता है, तो आरम्भ म रुष्ट होता है और फिर धीरे-धीरे बह कष्ट कम होता जाता है। उसके बाद तो भूख ऐसी मिट जाती है कि बिल्कुल मालूम ही नहीं पडती। उपवास का यह मध्यकाल होता है। वह मरी हुई भूख तब तक जाग्रत नहीं होती, जब तक शरीर पूणरूप से निर्बल नही हो जाता। अतएव उपवास तोड़ने का पहला लक्षण सच्ची भूख का जाग्रत होना है।

२—रोगी और निपेले शरीर की अवस्था में जिह्वा पर मैल की पपडी जम जाती है, यह पपडी तब तक दूर नहीं होती, जब तक शरीर के भीतर से मल और निप दूर नहीं हो जाता। अतएव उपवास तोड़ने का समय, उस समय माना जाता है, जब जिह्वा के ऊपर की तह में जमी हुई मैल की पपडी नष्ट हो जाती है और जिह्वा का रंग लाल वर्ण हो जाता है।

३—मल और विकार पूण मनुष्य के मुह से जो वायु निकलती है, उसमें एक प्रकार की दुर्गन्धि पायी जाती है। यह दुर्गन्धि, शरीर के निर्बल हाने पर दूर हो जाती है। अतएव

उपवास ताडने का तीमरा लक्षण यह माना जाता है, जब मुँह से निकलने वाली त्रासु की दगन्धि आट जाती है ।

ऊपर लिखे हुए ताग, लक्षण स उपवास ताडने का समय निरिखत् रिया जाता है । इनमे तमग आर तामग लक्षण बहुत स्पष्ट आर गदत्प्रण माना जाता है । पाला लक्षण कभी-कभी सन्देहआत्मक ले जाता है किन्तु तमर तामर लक्षण, मे कभी किसी प्रकार का सन्देह नग हा सक्तन ।

यदि उपवास के रिके भ ऊपर लिखे हुए लक्षण प्रतीत होने लगे तो उपवास का आग चलान की अपेक्षा ताड देना ही अच्छा होता है ।

उपवास कैसे तोडना चाहिए ?

ऊपर बताये हुए लक्षण प्रतात होने पर उपवास ताड देना चाहिए । इस तात के लिए तहुत सावधान रहना की आवश्यकता है कि उपवास बहुत ही नियमानुसार ताडा जाय । यदि भाजन जरा भी नियम-विन्दे हाजायगा अथवा प्रत्यक्ता स अतिक मात्रा मे लिया जायगा ता उपवास के द्वारा उपन्न की हुई शरीर की सन्पूरण परिस्थिति उलट जायगी । इसलिए उपवास क ताद भोजन प्रारम्भ करने मे तहुत सावधानी की आवश्यकता पड़ती है ।

उपवास विशेषज्ञों का कहना है कि उपवास तोडने के ताद तरल पदार्थ ही पेट मे जाने चाहिए आर तरल पदार्थ मे खट्टे आर माठे फलों का रस ही सर्वात्तम है । सन्तरा, नागदी अनन्नास

इसमें सन्देह नहीं कि उपवास कथेद भूय का रहना ठीक होता है, किन्तु यदि आरम्भ में भर पेट कुछ भी खा लिया जायगा तो बहुत बड़ा व्यतिक्रम पैदा होजायगा। इसलिए यही मतकता से काम लेना चाहिए।

उपवास के घाद पथ्य

एक और दो दिनों का उपवास तो साधारण बात है, किन्तु यदि इसके आगे उपवास किया जाता है तो चित्तों ही अधिक दिना का उपवास चलेगा, उतनी ही साधनों की आवश्यकता होगी। इसलिए यहाँ पर, विशेष सुविधा के लिए, उपवास तोड़ने पर किस प्रकार पथ्य करना चाहिए और कथे तक, उसको स्पष्ट करना अधिक आवश्यक है—

३ से लेकर ६ दिनों तक के उपवास का पथ्य

पहला दिन—दो बार से लेकर तीन बार तरु सतरा, नारङ्गी टिमाटर और चकोतरा जैसे फलों का रस एक बार में १० तोला तक।

दूसरा दिन—दूसरे दिन पहले दिन का पथ्य और उसके साथ सेव, अनत्रास दिन में तीन बार। एक बार में दो सेव से अधिक नहीं। इसी हिसाब से अनत्राम।

तीसरा दिन—ऊपर लिखे हुए फला का रस, फल तथा मक्खन निमाला हुआ ताजा मट्ठा। मट्ठा की मात्रा एक बार में पाव भर से अधिक नहीं। सेव और आगर।

उपवास तोड़ने का तीमरा लक्षण यह माना जाता है जब मुह में निकलने वाली वायु की दगन्धि मिट जाती है।

ऊपर लिखे हुए तीनों लक्षणों में उपवास ताड़ना का समय निश्चित किया जाता है। इनमें रमरग और तीमरा लक्षण बहुत स्पष्ट और महत्वपूर्ण माना जाता है। पहला लक्षण रभी-रभी सन्देह-आत्मरु हो जाता है किन्तु रमर-तीमर लक्षण में रभी किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता।

यदि उपवास के दिनों में ऊपर लिखे हुए लक्षण प्रतीत हान लगे तो उपवास को आगे चलाने की अपना ताड़ देना न श्रद्धा हाता है।

उपवास कैसे तोड़ना चाहिए ?

ऊपर बताये हुए लक्षण प्रतीत होने पर उपवास ताड़ देना चाहिए। इस बात के लिए बहुत सावधान रहने का आवश्यकता है कि उपवास बहुत ही नियमानुसार ताड़ा जाय। यदि भाजन जरा भी नियम-विरुद्ध होजायगा अथवा आवश्यकता में अधिक मात्रा में लिया जायगा तो उपवास के द्वारा उत्पन्न की हुई शरीर की सम्पूर्ण परिस्थिति उलट जायगी। इसलिए उपवास के बाद भोजन प्रारम्भ करने में बहुत सावधानी का आवश्यकता पड़ती है।

उपवास-विशेषज्ञों का कहना है कि उपवास ताड़ने के बाद तरल पदार्थ ही पेट में जाने चाहिए और तरल पदार्थों में लड्डे और मीठे फलों का रस ही सर्वोत्तम है। मन्तरा, नागझा, अनन्नास

इसमें सन्देह नहीं कि उपवास के बाद भ्रूय का राकना कठिन होता है, किन्तु यदि आरम्भ में भर पेट कुछ भोजन खा लिया जाय तो बहुत बड़ा व्यतिक्रम पैदा होजायगा। इसलिए यही सतर्कता से काम लेना चाहिए।

उपवास के बाद पथ्य

एक और दो दिन का उपवास तो साधारण बात है, किन्तु यदि उसके शगे उपवास किया जाता है तो जितने ही अधिक दिना का उपवास चलेगा, उतनी ही मात्राधानी की आवश्यकता होगी। इसलिए यहाँ पर, विशेष सुविधा के लिए, उपवास तोड़ने पर किस प्रकार पथ्य करना चाहिए और कब तक, इसको स्पष्ट करना अधिक आवश्यक है—

३ से लेकर ६ दिनों तक के उपवास का पथ्य

पहला दिन—दो बार से लेकर तीन बार तक सतरा, नारङ्गी टिमाटर और चक्रोतरा जैसे फलों का रस एक बार में १० तोला तक।

दूसरा दिन—दूसरे दिन पहले दिन का पथ्य और उसके साथ सेब, अनन्नाल दिन में तीन बार। एक बार में दो सेब से अधिक नहीं। इसी हिसाब से अनन्नास।

तीसरा दिन—ऊपर लिखे हुए फलों का रस, फल तथा मक्खन निकाला हुआ ताना मट्ठा। मट्ठा की मात्रा, एक बार में पाव भर से अधिक नहीं। सेब और अंगूर।

तीन दिन के उपरात—पत्तीपाले शाक, लोकी, मूली और परवल कवल उजाड़ कर और नमक नाली मिर्च मिलाकर। गाय का दूध लिया जा सकता है और अन्न ग्रहण किया जा सकता है। दूध गम किया हुआ है और चूम-चूम कर पिया जाय।

७ से लेकर १२ दिनों तक के उपवास का पथ्य

पहला दिन—केवल सन्तरा और नारंगी का रस दिन में तीन बार तक। तानो बार में एक पाव से लेकर डेढ़ पाव तक।

दूसरा दिन—सन्तरा, नींबू, चकोतरा, टिमाटर अदि खट्टे और भीठ नाच फला का रस दिन में पाँच बार तक। एक बार में आधा पाव से अधिक नहीं।

तीसरा दिन—फला का रस, शाक-जल। फलों का रस दिन-भर में आधा सेर तक और शाक-जल एक सेर तक। इसके सिवा सेब और अगूर साधारण मात्रा में।

चौथा दिन—ऊपर के फलों के साथ-साथ शाक-जल दिन में दो सेर तक।

चार दिन के उपरात—फल, फलों के रस, मखन निकाला हुआ ताजा मूठा और शाक-जल। दो दिनों के बाद गाय या बकरी का गरम चिया हुआ दूध। एक पाव से लेकर डेढ़ पाव तक। उसके बाद जो या गहूँ के भाटे आटे की रोटी, मूँग की दाल अथवा लोकी पालक या मूली के शाक के साथ। पहले दिन बहुत कम मात्रा में। दूसरे दिन उससे कुछ अधिक, तीसरे दिन उससे भी कुछ अधिक।

मद गति में रोगी को भोजन की चीजें देने का क्रम रखा जाता है। यदि तीन सप्ताह से अधिक का उपवास करना पड़े तो पहली बात तो यह है कि किसी अनुभवी आत्मी की देख रेख अत्यन्त आवश्यक होगी। उसके सिवा, ताड़ने पर आरम्भ में सन्तरे के रस को सिवा और कुछ भी न देना होगा। और वह भी उतनी ही मात्रा में, जितनी मात्रा एक वर्ष के बालक के लिए आवश्यक होती है। इस मात्रा को धीरे-धीरे बढ़ाना होता है। तीसरे दिन या उसके उपरांत शाक-जल दिया जा सकता है। किन्तु दिन में पहले दिन तीन पात्र में अधिक नहीं और एक पार में दस तोला से अधिक नहीं।

उपवास ताड़ने पर पहले दिन सन्तरे का रस दिन में तीन छट्ठों तक। एक बार में एक छट्ठों से अधिक नहीं। दूसरे दिन चार पार में डेढ़ पात्र से अधिक नहीं। इसी प्रकार उसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए। एक सप्ताह तक इतनी मात्रा से इन चीजों की मात्रा बढ़ानी चाहिए, जिसमें दी हुई खुराक आवश्यकता से कम ही रहे। लम्बे उपवास के ताड़ने पर पथ्य की असावधानी अत्यन्त हानिकारक हो सकती है।

एक सप्ताह के बाद जो के आटे की हल्की रोटी, उबले हुए शाक के साथ थोड़ी मात्रा में आरम्भ की जा सकती है। उसके उपरान्त उसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई जा सकती है। तत्पश्चात् दूध का देना आधा पात्र से लेकर शुरू किया जा सकता है। यदि दूध देने पर जरा भी अपच मालूम हो तो दूध रोक देना चाहिए।

१२ से लेकर १८ दिनों तक के उपवास का पथ्य

पहला दिन—सन्तरा या नारंगी का रस दिन में तीन बार। दिन भर में पाव-भर से अधिक नहीं।

दूसरा दिन—सन्तरा, नारंगी या टिमाटर का रस दिन : चार बार, कुल डेढ़ पात्र तक।

तीसरा दिन—ऊपर का पथ्य और शाक-जल, फलों का रस आधा सेर तक, शाक-जल एक सेर तक।

चौथा दिन—उपरोक्त पथ्य, शाक-जल डेढ़ सेर से लेकर दो सेर तक। सेब और अगूर।

पाँचवाँ दिन—फल, फलों का रस ढाई पात्र तक। शाक-जल दो मेर से लेकर ढाई सेर तक। उनालं हुए शाक। मुलायम और कच्ची मूली।

छठा दिन—उपरोक्त पथ्य। भूख अधिक मालूम होने पर सवाई मात्रा में।

छ दिनों के बाद—फल, फलों के रस, शाक-जल, जौ की रोटी उधाली हुई शाक-सब्जी के साथ। गाय या बकरी का गरम किय हुआ दूध, आरम्भ में एक पात्र से अधिक नहीं।

१८ दिनों से अधिक उपवास के पथ्य

ऊपर तीन सप्ताह तक के उपवास का पथ्य जो बतलाया गया है, उससे इस बात का पता चलता है कि उपवास के बाद स्विकनी

मृ गति में रोगी को भोजन की चीजें देने का क्रम रखा जाता है। यदि तीन सप्ताह से अधिक का उपवास करना पड़े तो पहली रात तो यह है कि किमी अनुभवी आत्मी की देख रेख प्रत्यत्र आवश्यक होगी। उसके सिवा, ताडन पर आरम्भ में सन्तरे के रस के सिवा और कुछ भी न देना होगा। और वह भी उतनी ही मात्रा में, जितनी मात्रा एक वर्ष के बालक के लिए आवश्यक होती है। इस मात्रा का धीरे-धीरे बढ़ाना जाना है। तीसरे दिन या उसके उपरांत शाक-फल दिया जा सकता है। किन्तु दिन में पहले दिन तीन पात्र में अधिक नहीं और एक बार में दस तोला से अधिक नहीं।

उपवास तोडने पर पहले दिन सन्तरे का रस दिन में तीन छटॉक तक। एक बार में एक छटॉक से अधिक नहीं। दूसरे दिन चार बार में डेढ़ पात्र से अधिक नहीं। इसी प्रकार उसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए। एक सप्ताह तक इतनी सावधानी से इन चीजों की मात्रा बढ़ानी चाहिए, जिसमें दी हुई खुराक आवश्यकता से कम ही रहे। अन्य उपवास के तोडने पर पथ्य की असावधानी अत्यन्त हानिकारक हो सकती है।

एक सप्ताह के बाद जो के आटे की हल्की रोटी, उबले हुए शाक के साथ थोड़ी मात्रा में आरम्भ की जा सकती है। उसके उपरान्त उसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई जा सकती है। तत्परचात् दूध का देना आधा पात्र से लेकर शुरू किया जा सकता है। यदि दूध देने पर जरा भी अपच मालूम हो तो दूध रोक देना चाहिए।

और यदि अपच न मालूम हो तो धीरे-धीरे उसकी भी मात्रा बढ़ाते जाना चाहिए।

इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि उपवास तोड़ने पर उपवास काल का कार्यक्रम बन्द होजायगा। किन्तु शीतल जल का पीना और ठण्डे जल में स्नान करना आदि परापर जारी रहेगा। उपवास तोड़ने के बाद जो पथ्य आरम्भ होता है, उसमें जो तर-कारियाँ बतलाई गयी हैं, वे केवल उभलो हुई होनी चाहिए, तली हुई नहीं। उभालने के साथ-साथ नमक और काली मिच के सिवा अन्य मसाला का सयाग न करना चाहिए। पथ्य के दिनों में यदि किसी समय अपच मालूम हो अथवा पेट भारी जान पड़े तो उसके बाद पथ्य की चीजें भी रोक देनी चाहिए और जब पेट साफ होजाय तो फिर आरम्भ करना चाहिए।

२६--उपवास के उपरांत स्वास्थ्य

उपवास के पचास शरीर में जड़ी तेजी के साथ स्वास्थ्य और शक्ति निमाण का कार्य होता है। और जोड़े ही दिना में इतना अधिक स्वास्थ्य का संचय हो जाता है, जितना कि पहले कभी नहीं रहा। यदि उपवास के उपरान्त समय-नियम के साथ रहने की चेष्टा की जाए और अपने जीवन को प्रकृति का अनुगामी बनाया जाए तो शरीर का वह सुख प्राप्त होता है, जिसकी कल्पना उसके विरुद्ध जीवन में कभी नहीं की जा सकती।

इस बात का सदा स्मरण रखना पड़ेगा कि आवश्यकता से अधिक भोजन और अभाव्य भोजन सदा शरीर को रोगी बनाता है। यदि मनुष्य प्रकृति का अनुसरण करे तो बहुत ही कम उसको शारीरिक कष्ट हो सकता है। इस प्रकार की बातें पुस्तक के आरम्भ में विस्तार के साथ बतायी जा चुकी हैं। यहाँ पर अत्यन्त संक्षेप में उन बातों पर प्रकाश डालना है, जिनका अनुसरण और अनुगमन मनुष्य का सदा स्वस्थ रहने में सहायता करता है।

पाचक भोजन—जिन के पचाने में सदा ऐंसे होने चाहिए जो सरलतापूर्वक पच सकें। साथ ही स्वास्थ्यकर भी हो। गरिष्ठ पदार्थ कभी भी लाभदायक नहीं होते।

वाज्जारू मिठाइयों—इनसे अधिक बढ़कर हानिकारक शायद ही कोई चीज हासके। इसलिए प्रकृति-अनुगामी मनुष्यों को इन्हें सदा बचाना चाहिए।

सुनह का जलपान—जो लोग सुनह किसी-न-किसी प्रकार की मिठाई के द्वारा जल-पान करते हैं, वे शरीर को नीरोग नहीं रख सकते। मिठाइयों के स्थान पर यदि प्रातः काल स्वच्छ और शुद्ध होकर, ताजे फल द्राये जॉय तो अधिक अच्छा होता है।

पानी पीना—मनुष्य को पानी अधिक मात्रा में पीना चाहिए। शीतल और स्वच्छ जल हमेशा स्वास्थ्यवर्धक होता है। इसके द्वारा मल का नाश होता है और शरीर निर्विकार होता है।

भोजन के साथ जल—खाना खाते हुए पानी पीने का अभ्यास छोड़ देना चाहिए। इससे पाचन-क्रिया में बाधा पड़ती है। चिनको खाने के समय प्यास लगती ही है, उनको अपनी आदत छोड़ने का अभ्यास करना चाहिए और भोजन करने के पूर्व थोड़ा-मा ठंडा जल पी लेना चाहिए।

कौर को ठीक-ठीक चराना—भोजन करने में जल्दी न करना चाहिए। जो चीज खाई जाय, उसको अच्छी प्रकार दातों से चग-चघाकर बारीक करना चाहिए और उसको निगलने की कोशिश करने के बजाय अपने आप पेट के भीतर जाने देना चाहिए।

अपच होने पर—जब कभी पेट में अपच मालूम हो, तो उसके बाद एक आध वार का भोजन, अवश्य रोक देना चाहिए।

इन सब बातों के साथ-साथ नित्य नियम पूर्वक स्वच्छ और शीतल वायु का सेवन, आशयस्तानुसार व्यायाम, उचित मात्रा में नित्य विराम और गम्भीर निद्रा मनुष्य का सदा नीरोग रखती है। इस प्रकार के प्राकृतिक नियमों का अनुसरण करके मनुष्य स्वास्थ्य-सौन्दर्य और दीर्घ जीवन प्राप्त करता है।

समाप्त

